आधुनिक प्रवृत्ति के लोगों के लिए अध्यात्म एक कठिन विषय है, क्योंकि उनकी शिक्षा भौतिक विज्ञान के आधार पर हुई है। वे कोरे तर्क, विश्लेषण तथा कार्य-कारण पर भरोसा करते हैं। इसलिए कभी-कभी अध्यात्म से वंचित रह जाते हैं। अध्यात्म वास्तव में है क्या? आइये इसे समझने का प्रयास करें।

अध्यात्म हमारे सबसे निकट मूल्यों का आधार है। हमारी आस्था और श्रद्धा का अधिष्ठान है। यह जीवन को प्रयोजन और अर्थ देता है। जैसे-जैसे यह हमारे अन्दर विकसित होता है, हमें प्रज्ञा एवं प्रेम से भर देता है। हम दिव्यत्व के प्रति गहरे आदर से भर जाते हैं। जब हमारा अध्यात्म-ज्ञान विकसित एवं स्फूर्त हो जाता है, तो हम सभी प्राणियों तथा स्वयं परमात्मा से संयुक्त हो जाते हैं। हमारा हृदय सभी के प्रति दयाभाव से भर जाता है।

अध्यात्म भौतिक जगत के प्रमाणों से परे है। ईश्वर है, क्या इसका कोई स्थूल प्रमाण दे सकता है? नहीं, लेकिन ईश्वर को अनुभव किया जा सकता है, उसे देखा जा सकता है।

अध्यात्म सम्प्रदायों से भिन्न है। यद्यपि ये एक दूसरे से सम्बन्धित हैं, लेकिन एक नहीं हैं। किसी कौम या सम्प्रदाय का सदस्य बने बिना भी एक व्यक्ति अध्यात्म का अनुभव कर सकता है। इसके विपरीत बड़े-बड़े तथा कथित मजहबी लोग भी अध्यात्म से वंचित रह सकते हैं।

अकसर देखा गया है कि सम्प्रदायों के बोझिल नियमों के कारण आज लोग उनके प्रति अनमने से होते जा रहे हैं। इस क्रम में वे भूल से शुद्ध अध्यात्म तक को बिसार बैठते हैं और इस अध्यात्म प्रदत्त आनन्द से भी वंचित रह जाते हैं। अत: किसी ने सही ही कहा है कि सम्प्रदाय जब संकीर्ण मतों पर जोर डालता है, तो वह अपने अनुयायियों को ईश्वर से जुड़ने के भाव से ही वंचित कर देता है। कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि हम अपने सम्प्रदाय रूपी वाहन में इस हद तक सवार हो जाते हैं, अर्थात् कर्म-कांडों में संलग्न हो जाते हैं कि अपने लक्ष्य- 'ईश्वर' को ही नज़रअन्दाज़ कर बैठते हैं।

इसलिए सच्चा धर्म, सच्चा सम्प्रदाय वही है जो हमारे भीतर शुद्ध आध्यात्मिकता को विकसित एवं पोषित करे। हमें हमारे वास्तविक लक्ष्य ईश्वर का साक्षात्कार कराए। एक फ्रेंच दार्शनिक ने कहा है- 'हम आध्यात्मिक अनुभव रखने वाले भौतिक प्राणी नहीं हैं, अपितु हम आध्यात्मिक प्राणी हैं जिनको भौतिकता का अनुभव है।' सत्य है, अध्यात्म रहस्यात्मक होते हुए भी हमारे स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए अत्यावश्यक है।

'क्या हनुमान जी सचमुच सूर्य को निगल गये थे?' इस असम्भव घटना को अलंकारयुक्त भाषा मानकर महाराज श्री ने जो व्याख्या की है, वह अनुपम विज्ञान तथा अनूठे सौन्दर्य को दर्शाती है। मुलट्ठी के विविध प्रयोग डॉ. कृपाल की लेखनी से जानिए और प्रयोग कीजिए। महाराज श्री ने कैसे मृत बच्ची को ज़िन्दा करके प्रचारक स्वामियों की रक्षा की, इस घटना का वर्णन 'मेरा अनुभव' में पढ़ें। नाम-सुमिरन का महत्व क्या है, जानिये एक आलेख द्वारा 'साधक सुधा' के अन्तर्गत। ◘◘

क्या हनुमान जी सच में सूर्य निगल गए थे?

'भाई साहब, यह सड़क किधर को जाती है?'

'वाह! उसका तो चांद सा मुखड़ा है।'

'युद्ध इतना भीषण था कि खून की नदियाँ बह गईं।'

'आसमान सिर पर क्यों उठा रखा है?'

इस प्रकार की कई पंक्तियाँ या मुहावरे हम अपने दैनिक जीवन में यूँ ही बोल देते हैं। परन्तु ज़रा आप इनके प्रत्यक्ष अर्थ पर ध्यान दें। क्या वास्तव में एक जड़ एवं स्थिर सड़क कहीं जा सकती है? विचारिए, क्या किसी का मुखड़ा सच में चांद जैसा अतिशय सफेद हो सकता है? युद्ध चाहे भीषणातिभीषण हो, परन्तु क्या कभी खून की नदियाँ बह सकती हैं? कितना भी हो-हल्ला मचाया जाए, किन्तु क्या आसमान को सिर पर धारण करना संभव है? नहीं, कदापि नहीं! यथावत् अर्थ लेने पर तो ये पंक्तियाँ घोर अतिशयोक्तियाँ या फिर गूलर के फूल जैसी असंभवोक्तियाँ ही लगती हैं। अत: इनके ज्यों के त्यों नहीं, बल्कि यौगिक अर्थात् अंतर्निहित अर्थ निकाले जाते हैं। किसी भी वस्तु या घटना की भीषणता या अतिशयता को उजागर करने के लिए इनका प्रयोग होता है। इन्हें अतिशयोक्ति नहीं, अलंकार माना जाता है। भाषा का श्रृंगार! शब्दों की सुन्दर सजावट!

हमारे पौराणिक शास्त्र-ग्रन्थों और काव्यों में भी कुछ ऐसी ही सजी हुई शैली अपनाई गई है। इनमें दर्ज़ अधिकांश दृष्टांत अलंकारिक हैं। अलंकारों में पिरोकर लिखे गए हैं। अल्पज्ञतावश हम उनके ज्यों के त्यों अर्थ निकालने की कोशिश करने लगते हैं। इस दिशाभ्रष्ट कोशिश में अर्थ तो क्या हाथ लगना; हाँ, हम अपने आर्ष इतिहास को कल्पनाओं का भण्डार अवश्य समझ बैठते हैं। परन्तु जब हम इन अलंकारों की चिक हटाकर इनके पीछे देखते हैं, तो एक अनुपम विज्ञान और अनूठे सौन्दर्य का दर्शन होता है। ऐसा ज्ञान-विज्ञान और रूप-सौन्दर्य, जिसकी एक झांकी ही हमारे हृदय को अपने पूर्वजों के प्रति

...ताकि शिक्षालयों में और 'चो' न बनें!

यह घटना है अप्रैल, 2007 की। अमरीका की वर्जिनिया टैक यूनिवर्सिटी से 32 शव उठाए गए। ये शव थे उसी विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले युवा छात्र-छात्राओं के! दुर्भाग्यवश ये एक घिनौने हत्या-कांड के शिकार हुए थे। हत्यारा उसी यूनिवर्सिटी का एक तेईस वर्षीय छात्र चो सुंग था। उस सुबह... यह युवक हिंसक मनसूबों की स्याही से एक नया अमानवीय इतिहास रचने, कॉलेज में दाखिल हुआ। उसके हाथों में रचनात्मक कलम नहीं, विध्वंसात्मक बंदूक थी। बगैर निशाना साधे, उसने अंधाधुंध गोलियाँ चलाईं। नरसंहार का ऐसा तांडव रचा कि कैम्पस की चहकती धरती मिनटों में मरघट में तब्दील हो गई!

जांच पड़ताल हुई। जानने के लिए कि चो ने ऐसा क्यों किया। सामान्य से कारण सामने आए। जी हाँ, सामान्य से! वर्तमान दौर के संदर्भ में तो उन्हें सामान्य ही कहा जाएगा। एक कारण था- किसी युवती के संग जुड़े प्रेम-सम्बन्ध में असफलता! इस नरसंहार से पूर्व अपनी प्रेमिका को संबोधित करते हुए उसके अंतिम शब्द थे- 'तुमने मुझे किनारे कर दिया और मेरे लिए कोई अन्य राह नहीं छोड़ी। निर्णय तुम्हारा था। इसलिए अब तुम्हारें हाथों पर खून लगा है, जो कभी नहीं धुलेगा...'

दूसरा कारण था- ऑल्ड बॉय (Old Boy) नामक एक हिंसक साऊथ कोरियन फिल्म के हीरों और किरदारों की रील लाइफ को रीयल लाइफ में उतारने की होड़! चो ने इस हत्याकांड से पूर्व अमरीका के टी.वी. नेटवर्क- एन.बी.सी. को अपनी कई वीडियो फिल्में भेजी थीं। इनके अंतर्गत वह बन्दूक और हथौड़े के साथ वैसी ही आक्रामक मुद्राओं में खड़ा था, जैसी कि इस फिल्म के किरदार! जांचकर्मियों का कहना है कि वह इस फिल्म के खासे प्रभाव में था। बहरहाल, सारी पड़तालों की सुई एक ही बात पर आकर अटक गई। वह यह कि चो एक मनोरोगी था और घटना उसके दिमागी कलपुर्जों में आई खराबी से घटी एक दुर्घटना!

परन्तु गौरतलब है कि क्या यह सच में महज एक मनोरोग मंचित दुर्घटना ही थी। क्या हमारा ऐसा सोचना कबूतर की भांति बिल्ली के मारक प्रहारों के प्रति आँखें मूंदने जैसा न होगा? कहीं हम तूफान की आहट को हल्का झोंका कहकर टाल तो नहीं रहे? सावधान! यह किस्सा मात्र एक चो का नहीं है। विश्वभर के लाखों-करोड़ों युवक-युवतियों का है, जिनकी जीवन-गाड़ी उम्र की इसी पटरी पर पूरी रफ्तार से बेतहाशा दौड़ रही

है। जिस पीढ़ी के सिर पर बस दो ही भूत सवार हैं। एक वासना का और दूसरा हिंसा से लैस मीडिया का! इन दोनों के तिलस्मी असर से, कौन जाने कब कोई भला-चंगा युवक एक मनोरोगी, एक वहशी नरसंहारक चो बन बैठे? यह किस्सा मात्र वर्जिनिया यूनिवर्सिटी का भी नहीं है। यह खतरा तो आज हर विद्यालय, हर विश्वविद्यालय और शिक्षालय पर मंडरा रहा है, जिनकी उन्नत छतों तले युवा-पीढ़ी बोनी से बोनी होती जा रही है।

क्यों? शायद इसीलिए कि इन शिक्षा के आलयों अर्थात् मंदिरों में उन्हें शिक्षा का अपेक्षित शुद्ध प्रसाद नहीं मिल रहा। 'शायद' नहीं, बल्कि सौ प्रतिशत रूप से, इस पूरे मुद्दे की जड़ ही यही है। जब एक जीता-जागता पुतला घंटी बजाकर इन आलयों की चौखट के भीतर प्रवेश करता है, तो सारा समाज एक सुनहरा स्वप्न संजोता है। कैसा स्वप्न? यही कि अब जल्द ही एक सभ्य, सुसंस्कृत मानव का जन्म होगा। मानवता टकटकी बांधे इन चौखटों को निहारती है कि कब उसे समृद्ध करने के लिए कोई इकाई बाहर निकलेगी। असल में, इन शिक्षालयों और इनमें दी जाने वाली शिक्षा का दायित्व ही यही है। अनगढ़ मानवाकार पुतलों में मानवता की सांसें फूंकना। संवेदनशीलता, परमार्थभाव, न्यायप्रियता, संयम, सहनशीलता आदि मानवीय गुणों को प्रकट करना। निःसंदेह मानव-समाज के निर्माण की नींव में सबसे पहला और अहम् पत्थर शिक्षा का ही है।

यही कारण है कि जब भी भ्रूणहत्या, आतंकवाद, दहेज-प्रथा जैसे संगीन मुद्दों की बात उठती है, तो समाज-विशारद शिक्षा पर ज़ोर देने लगते हैं। अंतर्राष्ट्रीय कंठों से एक ही स्वर गूँजता है- 'समाज को शिक्षित करो! शिक्षा का विस्तार करो!' ऐसा नहीं कि इन स्वरों को अनसुना किया गया। बल्कि इन्हें साकार करने के लिए नए-नए शिक्षा स्थल खोले गए। सुदूर ग्रामों तक में 'ईच वन टीच वन', सर्वशिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम चलाए गए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी UNICEF जैसी संस्थाओं का गठन हुआ। परन्तु एक महाप्रश्न अभी भी अधर में झूल रहा है।

वह यह कि क्या आज का हाई-टैक साक्षर वर्ग इन वारदातों में शामिल नहीं है? युवक चो तो स्वयं अमरीका की नामी-गिरामी टैक यूनिवर्सिटी का छात्र था। स्वीडिश रिसर्च काऊंसिल के एक सर्वे से पता चला है कि कन्या भ्रूणहत्या के मामले आजकल शिक्षित वर्ग में ही अधिक पाए जाते हैं। और फिर डॉक्टर जो इस पाप को अंजाम देते हैं, क्या वे निरक्षर, अनपढ़ या जाहिल हैं? आजकल मानव बम बनाने वाले भी कोई अल्हड़-गंवार नहीं रहे। (उदाहरणतः Gaslow's foiled car bomb attack) दहशताना आतंकवादी हमलों के पीछे पूरा मास्टर माइंड गिरोह काम करता है। दहशतगर्दी की इस दुनिया में 'Organized Crimes' (संगठित व व्यवस्थाबद्ध अपराध) किए जा रहे हैं। इन अपराधों के सूत्रकार प्रचलित से भी एक दर्ज़ा अधिक उन्नत तकनीकें इस्तेमाल करते हैं। सूत्र बताते हैं कि वर्तमान में भारत की आतंकवाद विरोधी ऐजेंसियों के पास 3-डिजिट (3-digit) तकनीक वाले यंत्र हैं। कुछेक के पास अधिक से अधिक 4-डिजिट युक्त। परन्तु आतंकवादी गिरोह 5-डिजिट तकनीक वाले detonation codes, country servers और GSM triggers से खेल रहे हैं। ये उच्चस्तरीय तकनीकें क्या दर्शाती हैं?- शिक्षा का अभाव या शिक्षा का प्रभाव? इंटरनेट जगत के महापंडित ही आजकल हैकिंग, इलैक्ट्रॉनिक डकैतियों जैसे साइबर क्राइम्स को अंज़ाम दे रहे हैं। इतना ही नहीं, जो लोग उच्चपदों पर आसीन हैं- वे ही भ्रष्टाचार के जनक हैं। क्या वे सब निरक्षर हैं या शिक्षा

से वंचित हैं?

अत: एक पैनी दृष्टि डालने पर हमारी शिक्षा-आधारित सारी मान्यताओं की कलई खुल जाती है। आकांक्षाओं के महल धराशायी हुए धूल में मिले दिखते हैं। इसका क्या अर्थ है? क्या शिक्षा का सिद्धान्त ही गलत है? नहीं! दरअसल, दोष सिद्धांत में नहीं, प्रणाली में है। यही दोष समाज के ज़िम्मेवार चिंतकों को भी भासित हुआ। इसलिए उनके कंठों से एक और सुरीली कूक उठी- केवल 'शिक्षा' नहीं, 'मूल्याधारित शिक्षा' का संधान करो। शिक्षालयों में 'Value education', 'Moral Science' देना शुरू करो।

यह वैल्यू एजुकेशन अथवा मूल्याधारित शिक्षा क्या है? यही कि छात्रों के मस्तिष्क को सिर्फ बाहरी जानकारियों का गोदाम न बनाया जाए। उनमें जीवन-सम्बन्धी मूल्यों का रोपन भी किया जाए। व्यावहारिक आदर्शों की व नैतिक विचारों की फसल भी उगाई जाए। इस संदर्भ में अक्सर एक उदाहरण दिया जाता है। मान लीजिए, विज्ञान के दो छात्र हैं। दोनों के मस्तिष्क में कूट-कूट कर वैज्ञानिक वृत्ति भरना- यह काम शिक्षा का है। विज्ञान के सूत्रों, नियमों और आविष्कारों की जानकारी देना- यह काम भी शिक्षा का है। नि:सन्देह वर्तमान शिक्षा अपना यह दायित्व पूर्ण रूप से निभा भी रही है। परन्तु क्या इतना करना ही पर्याप्त है? नहीं! दरअसल, समस्याओं की शुरूआत का सिरा ही यही है। क्योंकि शिक्षा से मिली वृत्ति और जानकारी से जहाँ एक छात्र जानलेवा रोगों के उपचार के लिए अद्भुत औषधि का आविष्कार करता है, वहीं दूसरा जानलेवा आयुधों का निर्माण भी कर सकता है। औषधि के आविष्कार में सृजन है। आयुधों के आविष्कार में विध्वंस है। और दोनों ही आविष्कारों के घटने की प्रोबेबिलिटी (संभावना) बराबर-बराबर है। अत: इस दूसरी विध्वंसजनक संभावना को कैसे टाला जाए? यही काम मूल्याधारित शिक्षा यानी 'Value Education' का है। क्या करने योग्य है, क्या अयोग्य; क्या उचित है, क्या अनुचित- यह बताना मूल्याधारित शिक्षा का ही दायित्व है।

नि:सन्देह इस वैल्यू ऐजुकेशन को लेकर चिंतकों की यह सोच बहुत नेक है। कोटिश: साधुवाद! परन्तु क्षमा कीजिए, चिंतन की एक गहरी डुबकी लगानी अब भी शेष है। विचार कीजिए, समाज में कितने शिक्षित हैं, जिन्हें नहीं पता कि चोरी, डकैती या हत्या करना संगीन अपराध है। अमानवीय, अनैतिक कर्म है। परन्तु क्या इन मूल्यों के किनारे इन शिक्षित अपराधियों के मनोवेगों की बाढ़ को रोक पाते हैं? क्या मूल्यों की शिक्षा देने, बताने और समझाने से- मूल्य चरित्र के ढाँचे में उतर भी जाते हैं? कभी नहीं! मूल्यों की जानकारी होना 'ज्ञान' हैं। मूल्यों का चरित्र में उतर जाना 'विज्ञान' है। और इस 'ज्ञान' व 'विज्ञान' के बीच एक बहुत गहरी खाई पटी हुई है। सच मानिए, इस खाई को भरना- मूल्याधारित शिक्षा (Value Education) की भी सामर्थ्य में नहीं है।

ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए, क्योंकि शिक्षा चाहे कैसी भी क्यों न हो- किताबी, सामाजिक, व्यावहारिक या फिर मूल्याधारित- पर मूलत: है तो सैद्धान्तिक ही न! और कोरे सिद्धान्त कभी किसी शिक्षार्थी या व्यक्ति की मनोवृत्ति नहीं बदल सकते। उदाहरण के तौर पर एक हास्यपूर्ण वाकया सुनिए। एक बार एक पिछड़े ग्राम में एक समाजसेवी दल पहुँचा। यह ग्राम शराब-व्यसनियों का था। यौवन की दहलीज़ पर कदम रखते ही यहाँ के पुरुष-वर्ग को मदिरा की लत लग जाती थी। इसलिए समाजसेवियों ने

क्या मूल्याधारित शिक्षा हमारे मनोवेगों के आगे टिक पाती है?

एक शिक्षा प्रदायक जागरूकता शिविर आयोजित किया। उसके अंतर्गत उन्होंने ग्रामवासियों के समक्ष एक प्रयोग करके दिखाया। दो गिलास लिए। एक में पानी, दूसरे में शराब भरी। फिर दोनों में एक-एक कीड़ा डाल दिया। शराब में गिरा कीड़ा छटपटाने लगा। कुछ ही क्षणोपरांत उसने प्राण भी छोड़ दिए। जबकि पानी में गिरा कीड़ा सतह पर शान्ति से तैरता रहा। शराब का गिलास दिखाते हुए एक समाजसेवी बोला- 'गाँववासियों! समझे कुछ? ज़हरीली शराब का कैसा घातक असर होता है!' भीड़ में बैठा एक व्यसनी अविलम्ब खड़ा हुआ, बोला- 'जी समझ गया! शराब पीएँगे, तो पेट के सब कीड़े मर जाएँगे। इसलिए खूब पीओ। बेनागा पीओ।'

यह है हमारी मनोवृत्ति और हमारी सोच, हमारे चिंतन और हमारे कर्म पर इसकी सख्त पकड़! इसका हमारे व्यक्तित्व और प्रकृति पर इतना गहरा जमाव होता है कि नैतिक मूल्यों की तेजधार झड़ी भी इसे नहीं धो सकती।

Wordsworth

कहते हैं, प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ में बाल्यकाल से ही कविता व काव्य रचने की मनोवृत्ति थी। वह साधारण बात को भी कविता के रूप में कहता था। बात-बात पर कविता रच देता था। उसके पिताजी को उसकी इस काव्य-शैली से बहुत चिढ़ एवं घृणा थी। संभवत: इसलिए, क्योंकि वे उसे किसी अन्य क्षेत्र का विद्वान बनाना चाहते थे। इस कारण उन्होंने उसके काव्य कर्म पर प्रतिबंध लगा दिए। निरन्तर समझाया-बुझाया। अपने आदर्श चुन-चुन कर बाल-मन के खेत में रोपे। डांटा-फटकारा। यहाँ तक कि मारा-पीटा भी! इसी क्रम में एक बार उन्होंने भरपूर आक्रोश से बालक वर्डस्वर्थ को झिड़का और कविता न रचने का वायदा करने को कहा। जानते हैं, उस पल क्षमा मांगते व वायदा करते हुए भी वर्डस्वर्थ के मुख से क्या निकला-

Papa Papa Mercy take,
Verses I shall never make!

क्षमा-याचना भी कविता रूप में ही प्रस्फुटित हुई।

दरअसल, ये मनोवृत्तियाँ पूर्व जन्म के संस्कार होती हैं। माता-पिता प्रदत्त जीनस् के प्रभाववश भी पनप जाती हैं। इसके अलावा, यदि परिवेश से कोई विचार या संस्कार लम्बे काल तक प्राप्त होता है, तो वह भी मनोवृत्ति का रूप धारण कर हमारे मनोमय जगत में पैठ जाता है। अभिप्राय यह कि हमारी मनोवृत्तियाँ विचारों का सघन और पका हुआ रूप हैं। उधर, मूल्याधारित शिक्षाएँ केवल कोरे विचार हैं। एक पक्का है। दूसरा कच्चा है। कच्चे से आप पक्के को नहीं हटा सकते।

(अत: मूल्याधारित शिक्षा के साथ कौन सी आंच सुलगाई जाए, जिससे वह भी पक जाए और मनोवृत्तियों, संस्कारों के पक्के प्रभाव को शिथिल कर सके? मानवीय मूल्य व्यक्ति की अमानवीय प्रकृति को कब और कैसे बदल सकते हैं? सारांशत: शिक्षा पूर्णता को किस प्रकार प्राप्त होगी? जानेंगे अगले अंक में।)

क्रमशः

हँसते-हँसते, समझ लें

शाम को दफ्तर खाली हो चुका था। पर एक बल्ब अब भी जल रहा था। अधिकारी आखिरी राउंड लगाता हुआ आया। चिल्लाकर उसने चौकीदार से पूछा- 'इस बल्ब के जलने के पीछे कौन ज़िम्मेवार है?'

'जी, एडिसन!'- पढ़े-लिखे चौकीदार ने झट जवाब दिया।

क्या यही हाल वर्तमान शिक्षा का नहीं? सैद्धान्तिक ज्ञान तो बहुत है, पर जीवन का व्यावहारिक या चारित्रिक विज्ञान कुछ भी नहीं!

मन चंगा तो कठौती में गंगा! (भाग-2)

आपने पिछले अंक में पढ़ा कि एक पंडित जी गंगा-स्नान करने जा रहे थे। बीच रास्ते में उनका सामना संत रविदास जी के साथ हो गया। उन्होंने श्री रविदास जी को निम्न जाति का मानकर बहुत भला-बुरा कहा। लेकिन श्री रविदास जी ने संयम और सहनशीलता का अद्‌भुत परिचय दिया। समझाना चाहा कि प्रभु की नज़र में हर इंसान की बराबर कीमत है। वह वर्ण-जाति के आधार पर भेद नहीं करता। लेकिन जब पंडित जी बातों से नहीं समझे, तो उन्होंने एक लीला की। अपनी जेब से एक रूपइया निकाला और पंडित जी से कहा कि वे इसे गंगा मैय्या के हाथ में ही दें और बदले में एक कंगन लेकर आएँ। पंडित जी उन्हें मूर्ख कहकर आगे चले गए। गंगा तट पर पहुँचकर उन्होंने स्नान किया और फिर वह रूपइया माँ को भेंट करने के लिए रविदास जी का बताया मंत्र पढ़ा। फलस्वरूप एक कौतुक घटा! क्या?

आइए जानें।

जी हाँ! सामने दो दिव्य हस्तकमल, जिनमें चंदन सी खुशबू, तुलसी सी पवित्रता और अग्नि सी तेजस्विता थी, धीरे-धीरे गंगा जल से बाहर निकले। कलाइयों में दैवीय रत्नजड़ित कंगन शोभायमान थे। जिनकी चमक यूँ थी, मानो आसमां के सारे तारे इन कंगनों में सिमट कर टिमटिमा रहे हों! देखते-ही-देखते वह ममतामयी सूरत भी सामने आ गई। गंगा मैय्या श्वेत दिव्य वस्त्रों में साक्षात् प्रकट हो गईं। वाह क्या खूब नज़ारा था, जिसे देख आकाश में नगाड़े बजने लगे! फूलों की वर्षा होने लगी! देवलोक तक में चर्चे हो उठे!

कुछ क्षणों बाद गंगा मैय्या ने अपनी वाणी तरंगित की- 'हे ब्राह्मण देवता! तुम परम सौभाग्यशाली हो जो तुम्हें संत की सेवा का सुअवसर मिला। मैं कब से श्री रविदास जी के इस एक रूपइये का इंतज़ार कर रही थी। क्योंकि यह मात्र रूपइया नहीं, बल्कि प्रेम, श्रद्धा और वैराग्य से ओतप्रोत एक अनुपम भेंट है। निःसन्देह यह रूपइया मुझे ऐसे प्रिय है, जैसे मृग को उसके नयन और मोर को उसके पंख। इसलिए हे ब्राह्मण देवता, अब और विलम्ब न कीजिए और तत्काल यह रूपइया मुझे थमा दीजिए।'

बेचारे पंडित जी का दिमाग तो सुन्न हो चुका था। फिर भी कांपते हाथों से उन्होंने रूपइया आगे बढ़ा दिया। गंगा मैय्या ने तुरन्त आगे बढ़कर वह लिया और बड़े प्रेम से उसका अपनी आँखों से स्पर्श किया। फिर बोलीं- 'हे ब्राह्मण देवता, जिस अधीरता से मैं श्री रविदास जी की इस सौगात का इंतज़ार कर रही थी, वैसे ही वे भी मेरे कंगन की बाट जोह रहे होंगे। कृपया यह कंगन सीधा जाकर उनको दे देना।' इतना कहकर गंगा मैय्या ने अपने दायें हाथ का कंगन निकालकर पंडित जी के हाथ पर रख दिया और वापिस जल की लहरों में समा गईं।

लीला सिमटी तो पंडित जी की भी थोड़ी कंपन थमी। पर दिमाग के घोड़े दौड़ने लगे- 'हे भगवान, यह सब कैसे हो गया! कहाँ गंगा मैय्या और कहाँ वह जूते गांठने

वाला रविदास! आखिर राजा भोज और गंगू तेली की बराबरी कैसे हो गई? रविदास ने गंगा मैय्या को ऐसा कौन सा गुड़ खिलाया कि मैय्या उसके इतने गुण गा रही थी? हो न हो, ज़रूर कोई जादू-टोना जानता है रविदास!... हे भगवान, कभी-कभी तो लगता है कि तू भी पक्षपाती है। मंत्र-मालाएँ फेरते-फेरते उम्र बीत गई मेरी, लेकिन गंगा मैय्या को अपने लिए ऐसा आकुल तो मैंने कभी सपने में भी नहीं देखा!'

इन्हीं विचारों की तेज आंधियों में गिरते-पड़ते पंडित जी, तेज़ कदमों से घर की तरफ बढ़ चले। करीबन अधरस्ते पहुँचकर उनकी दृष्टि एकाएक मुट्ठी में दबे उस कंगन पर पड़ी। गंगा मैय्या के प्रकटीकरण की लीला में वे इतने बौरा गये थे कि कंगन देखने का तो ध्यान ही नहीं रहा था। लेकिन अब जब नज़र कंगन पर पड़ी, तो आँखें फैल गईं। 'वाहऽऽऽ...! कितना सुंदर कंगन है! अवश्य ही देवलोक का होगा। क्योंकि यहाँ के जौहरियों के बस की बात तो है नहीं ऐसा कंगन बनाना... लेकिन भला रविदास इस कंगन का क्या करेऽऽगाऽ...?' अब पंडित जी को श्री रविदास जी अपात्र दिखने आरम्भ हो गये। वे किन्तु-परन्तु, अगर-मगर, लेकिन-वेकिन के तर्कों से कुछ और ही चक्रव्यूह रचने लगे- 'बताओ, भला अंधों के देश में चश्मे और गंजों की नगरी में कंघी का क्या काम? माना अखरोट से मुट्ठी भरना कोई बुरा नहीं, लेकिन मुँह में दांत भी तो होने चाहिएँ। जिस रविदास ने सारी उम्र चमड़े के साथ बिताई है, चमड़े को ही परखा है, वह क्या जानेगा कंगन किस चिड़िया का नाम है... गंगा मैय्या बेचारी भोली है। वरना क्यों नाली की ईंट चौबारे पर लगातीं?...जो भी हो! अब यह कंगन मैं रविदास को तो नहीं देने वाला। बताओ, बड़ी मुश्किल से तो किस्मत का पिटारा खुलने को आया है, क्या उसे ऐसे ही कौड़ियों से तोल दूँ!'

पंडित जी अभी यह सब सोच ही रहे थे कि वे राजमहल के सामने पहुँच गए। वहाँ वार्षिक उत्सव पर राजा के दर्शनों के लिए लम्बी-लम्बी कतारों में लोग खड़े थे। सभी के हाथों में कोई न कोई उपहार ज़रूर था, जो उन्हें राजा को देना था। यह देखकर पंडित जी का दिमाग भी दौड़ने लगा- 'हुंऽऽऽ! तो यह बात कुछ जमी न! क्यों न मैं भी राजा को यह कंगन भेंट करके प्रसन्न कर दूँ?...राजा का मुझ पर प्रसन्न होने का मतलब है, मेरा रातों-रात गंगू तेली से राजा भोज हो जाना। हो न हो, यह कंगन पाकर राजा तो नहला देगा मुझे अशर्फियों की वर्षा से! वाह कितना अच्छा होगा! महलनुमा घर, नौकर-चाकर, ठाठ-बाट, आखिर क्या कुछ नहीं होगा मेरे पास? कोई दस बार ''राम-राम'' कहेगा, तो एक बार जवाब दूँगा। मेरी पंडिताइन भी पटरानियों की तरह हुक्म चलाएगी। बड़े-बड़े लोग मेरे यजमान होंगे, छोटे-मोटे घरों में तो फिर मैं झांकने वाला भी नहीं....'

बस पंडित जी भी लग गये कतार में। बड़े-बड़े अरमान संजोकर! पर थोड़ी ही देर में उनके सब अरमानों पर बिजलियाँ गिर गईं। कारण कि इतनी भीड़ में कौन क्या दे रहा है, राजा को पता ही नहीं चल रहा था। फिर भी राजा ने जब कंगन लिया, तो एक बार तो उसकी नज़र कंगन पर

ज़रूर अटकी और पंडित जी को भी उसने ऊपर से नीचे तक अपनी नयन-छलनी से छाना। लेकिन कुछ पूछने, कुछ बातचीत करने का समय कहाँ था? और जब पंडित जी ने बोलना चाहा, तो पीछे से लगे एक धक्के ने उनको कई गज आगे धकेल दिया।

'धत्त तेरे की! सारी मेहनत खूह खाते (व्यर्थ) चली गई। रविदास से बेईमानी भी की और इधर कुछ पल्ले भी नहीं पड़ा। कहते हैं, भागते चोर को तो लंगोटी भी बहुत होती है। लेकिन मुझे तो इतना भी नहीं मिला। हाय रे फूटी किस्मत! हाथ आई लक्ष्मी चकमा दे गई! सयानों ने सच ही कहा है कि भाग्य जब विपरीत हो, तो हाथी पर बैठे हुए भी कुत्ता काट जाता है। पता नहीं कौन से बुरे कर्म थे मेरे जो इधर को मुँह कर बैठा! इससे अच्छा तो मैं यह कंगन अपनी पंडिताइन को ही दे देता। कम से कम दो-चार दिन तो हँस के रोटी खिलाती।'

यूँ ही विलाप करते हुए पंडित जी ज़ख्मी और लुटे-पिटे से महल से बाहर निकल आए। पाँव घसीटते हुए जब घर पहुँचे, तो पंडिताइन ने प्यार जताते हुए पूछा- 'अरे नाथ, आज चेहरे पर बारह क्यों बज रखे हैं? इतने हताश-निराश! क्या किसी ने कुछ कह दिया? बताइए तो ज़रा, मैं अभी उसकी जुबान खींच लूँगी।' पंडिताइन ने भी आज एक हवाई तीर छोड़ दिया। लेकिन पता थोड़े न था कि जो तीर पंडित जी छोड़ने वाले हैं, वह तो सीधे सीने के आर-पार हो जायेगा। पंडित जी भी नाक तक भरे हुए थे। इसलिए किस्मत को कोसते हुए सब उगल दिया। एक ही सांस में! बस उनकी यह गाथा क्या सुननी थी कि अब पंडिताइन लगी पति को कोसने और शुरू हो गया कोहराम!

उधर राजा ने शाम को फुर्सत में जब कंगन देखा, तो ठगा सा रह गया- 'अरे वाह! अति सुंदर! अद्‌भुत! कोई मुकाबला नहीं! सचमुच, यह कैसा अलौकिक कंगन है? निःसन्देह इस मृत्यु लोक का कंगन तो यह है नहीं, क्योंकि ऐसी आभा, ऐसी चमक तो उन हीरों के हार में भी नहीं थी, जो पिछले वार्षिक उत्सव पर मैंने अपनी प्रिय रानी को भेंट किया था। अभी जाकर रानी को यह तोहफा देता हूँ।' उधर जब रानी ने कंगन देखा तो यूँ मोहित हुई जैसे चकोर चांद पर फिदा हो जाता है। लेकिन एक अकेला कंगन पाकर थोड़ा रूंआसी सी होकर बोली- 'स्वामी, ज़रा बताइए, एक कान में झुमका हो, दूसरा कान सूना या एक आँख में काजल हो, दूसरी में नहीं, क्या ऐसा भी कभी होता है? नहीं न! तो फिर एक कलाई तो कंगन से सजी हो और दूसरी सूनी हो, क्या यह शोभा देगा? इसलिए, आप मुझे दूसरा कंगन भी ला दीजिए। जोड़ी बनाके पहनूँगी, तो खूब रंग चढ़ेगा।'

राजा- पर...

रानी- पर-वर कुछ नहीं! इस कंगन ने तो मेरा चित्त चुरा लिया है। आप कुछ भी करें। मुझे इस कंगन का जोड़ा चाहिए। नहीं तो आप मेरा मरा मुँह देखेंगे।

राजा- नहीं, नहीं, प्रिया! शुभ-शुभ बोलो! मुझे अच्छी तरह याद है कि यह कंगन एक ब्राह्मण ने दिया था। सैनिक भिजवाकर मैं अभी उसका पता लगवाता हूँ।

सैनिकों को पंडित जी का ठिकाना ढूँढ़ने में कोई दिक्कत नहीं आई। जब वे पंडित जी के घर पहुँचे, तो पंडित-पंडिताइन मातम सा बनाते हुए आंगन में ही बैठे थे।

सैनिक- ब्राह्मण देवता! क्या राजा को वह दिव्य कंगन भेंट करने वाले आप ही हैं?

पंडित जी(हड़बड़ाकर)- हाँ, हाँ, भाई! क्यों, क्या बात है?

सैनिक- पता नहीं, लेकिन आपको शीघ्रातिशीघ्र हमारे साथ राजमहल चलने का आदेश है।

बस अब क्या था! मानो पंडित जी के मुर्दा शरीर में फिर से प्राण आ गये। पंडिताइन को बोले- 'अरी ओ राम प्यारी, लड्डू बांट री, पूरे मोहल्ले में! लगता है भाग जग गये हमारे भी! भाग्यवान, मुझे राजा ने बुलाया है! अब देखना, कैसे खुलते हैं बंद किस्मत के ताले! अशर्फियों की बरसात होगी...बरसात!' पंडित जी बौरा से गये। जैसे बिल्ली को चूहों के ही सपने नज़र आते हैं, ठीक वैसे ही पंडित जी को भी धन-दौलत के स्वप्नों ने झुमा दिया।

क्रमशः

प्रश्नोत्तरी

समाधान प्रदाता-
सर्व श्री आशुतोष महाराज जी

प्रश्न- गुरु महाराज जी, नरसी बहुत उच्चकोटि के भक्त माने जाते हैं। पर मैंने सुना है कि उन्होंने अपने एक अभंग में भगवान को 'बहरूपिया' कहा है। सामाजिक दृष्टिकोण के अनुसार 'बहरूपिया' तो एक अपशब्द माना जाता है। फिर क्या नरसी जैसे भक्त का प्रभु को बहरूपिया कहना उचित था?

उत्तर- नरसी भक्त को अपने जीवन में एक अत्यन्त अद्‌भुत अनुभव हुआ था। उसी के आधार पर उन्होंने भगवान को 'बहरूपिया' कह डाला... बात उस समय की है जब नरसी एक धनाढ्य सेठ थे। अपार धन-संपदा संचित थी उनके पास। परन्तु इसी के साथ वे एकदम कंजूस भी थे। केवल और केवल धन-संचय में लगे रहते। एक पाई भी सद्कार्यों या धर्म-प्रसार में नहीं लगाते। मानो एक सर्प की भांति कुण्डली मारकर अपनी संपदा के ढेर पर बैठे रहते। अब चूंकि वे पूर्व जन्म में एक निष्ठावान भक्त रह चुके थे; उनके पास भक्ति के शुभ संस्कारों की सुषुप्त पूंजी भी थी- इसलिए प्रभु दयाद्र हो उठे। अपने प्रिय भक्त को सांसारिक कुचक्रों से मुक्त करने के लिए लीलाधारी ने एक अद्‌भुत लीला रची।

वे नरसी का ही रूप धरकर उनके सम्पन्न-समृद्ध घर में पहुँच गए। उस समय नरसी किसी कार्यवश बाहर गए हुए थे। नरसीरूप भगवान ने घर में प्रवेश करते ही द्वारपाल को कड़ी चेतावनी दी- 'देखो, अत्यन्त सावधानी से तैनात रहना। संसार में बहुत विचित्र हादसे घट रहे हैं। चोर, लुटेरे आदि धनाढ्य सेठों सा हूबहू रूप बनाकर धन ठग ले जाते हैं। बड़ी चतुराई से उनके धनमाल पर ज़बरन अधिकार कर लेते हैं। सुनने में आया है कि एक ऐसा ही बदनीयत बहरूपिया मेरे जैसा रूप धर कर घूम रहा है। इसलिए तुम पूर्ण वफादारी और निष्ठा से इस द्वार पर डटे रहना व किसी बहरूपिया को भीतर प्रवेश मत करने देना।' मालिक का आदेश पाकर द्वारपाल और अधिक तन कर खड़ा हो गया। भीतर जाकर प्रभु ने अन्य सेवकों को भी यही हिदायत दोहरा दी। सभी चौकस तथा चौकन्ने हो गए।

इतने में ही सेठ नरसी लौट आए। ज्यों ही उन्होंने अपने भवन के द्वार पर कदम रखा; तेज़धार भाले ने उनका मार्ग अवरूद्ध कर दिया। नरसी आश्चर्यित रह गए। डपट कर बोले- 'इतना दुस्साहस! मालिक के संग ऐसा दुर्व्यवहार!'

द्वारपाल- तुम और मालिक? हुँ! चल बहरूपिया कहीं का! हमारे स्वामी तो अंदर हैं।

इससे पूर्व कि नरसी कोई स्पष्टीकरण देते या प्रतिक्रिया करते, द्वारपाल ने भाले की नोंक सामने अड़ा दी। ठोकर मारकर भवन से दूर कर दिया। बेचारे नरसी घर-धन-संपदा से बेदखल होकर गाँव की पंचायत के पास पहुँचे। सभी को आपबीती बताई- 'मेरे विरूद्ध एक घोर षड्यंत्र रचा जा रहा है। कोई बहरूपिया मेरे जैसा चेहरा बनाकर मेरे भवन पर अधिकार जमाए बैठा है। अफसोस! मेरे सेवक-चाकर आदि भी इस षड्यंत्र के सहभागी हैं...' नरसी की गुहार सुनकर भवन में बैठे नरसी को बुलाया गया। प्रभु आए। दोनों में इतना साम्य कि असली की पहचान करना असंभव था। सब हतप्रभ! अन्तत: सरपंच ने युक्ति सुझाई- 'जाओ, भवन से बही-खाते उठा लाओ। इनमें से जो भी क्रय-विक्रय आदि व्यवसाय से जुड़ा सटीक हिसाब-किताब बता देगा, वही सच्चा नरसी माना जाएगा।' अब नरसी को तो इतने हिसाब-किताब का ध्यान कहाँ रहना था! जो थोड़ा बहुत था, वह भी नटवरनागर की कृपा से विस्मृत हो गया। परन्तु उधर नरसीरूप भगवान ने पाई-पाई की गणना करके दिखा दी। परिणाम? यही कि नरसी अपमानित होकर दर-बदर भटकने को विवश हो गए।

इधर भगवान ने उनके संचित धन की पोटलियों के मुँह खोल दिए। उसे दान-धर्म के कार्यों, सत्य के प्रचार इत्यादि में व्यय कर दिया। दीन-दु:खियों में बांट दिया। कोष बिल्कुल रिक्त कर डाला। उधर दिन-रैन भटकते हुए नरसी में वैराग की आंच उत्पन्न हो गई। पूर्व जन्मों के सुषुप्त संस्कार जागृत हो उठे। यह वही अलौकिक घड़ी थी, जब वे नेत्र तर करके गाने लगे थे- **'दर्शन दो घनश्याम नाथ, मोरी अंखियाँ प्यासी रे...'**

यहाँ एक तथ्य विचारणीय है। जब लीलाधारी किसी लीला को आयाम देते हैं, तो उस पर पूर्णत: खरे उतरते हैं। मुझे इस संदर्भ में एक रोचक सा दृष्टांत स्मरण हो आया। एक राज्य की बात है। उसमें एक तिलस्मी बहरूपिया आया। उसने चित्र-विचित्र रूप धारण करके वहाँ के नरेश का दिल बहलाने का प्रयास किया। अंत में, अपनी क्रीड़ाओं के समापन पर उसने राजा से पुरस्कार स्वरूप पाँच रूपये की मांग की। राजा ने अनमने भाव से कहा- 'किसलिए? हमारा मन तो प्रफुल्लित हुआ नहीं। कोई ऐसा स्वांग रचो कि हम प्रसन्न होकर तुम्हें स्वयं ही पुरस्कृत करने को व्याकुल हो जाएँ।'

बहरूपिये ने भी कहा- 'ठीक है! अब मैं आपसे यह पाँच रूपये तो लेकर ही रहूँगा। यह मेरा प्रण है!' इसके बाद उसने गाँव पहुँचकर ढिंढोरा पीट दिया कि अमुक स्थान पर एक सिद्ध महात्मा पधारे हुए हैं। वे बड़े वैरागी हैं। उनके दर्शन के प्रताप से सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। बस! दर्शनार्थियों का तो तांता लग गया। ख्याति राजा तक भी पहुँची। वह भी सभेंट दर्शनों के लिए आया। अमूल्य सामग्री संत के चरणों में अर्पित की। परन्तु उन्होंने अस्वीकार करते हुए कहा- 'नहीं, हम ठहरे फक्कड़ फकीर। हमें इन मणि-माणिक्यों से क्या सरोकार?' राजा ने बहुत अनुनय-विनय की। परन्तु संत अडोल रहे। राजा संत की महिमा गुनता-गुनता वापिस महल लौट आया।

अगले ही दिन, वह तिलस्मी बहरूपिया राजा के पास पुन: पहुँच गया। इस बार बहुत अधिकार से इनाम की मांग की- 'लाइए महासज, मेरे पाँच रूपये।' राजा ने विस्मित और प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा, तो उसने बताया- 'महाराज, कल जिन संत के सान्निध्य में आप स्वयं राजमहल से चलकर गए व श्रद्धा-भाव से भेंट चढ़ा रह थे, वह वस्तुत: मैं ही था। कहिए, अब तो आप मेरे स्वांग से भ्रमित हो गए न! इसलिए लाइए मेरा इनाम।'

राजा ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए एक जिज्ञासा भी रखी- 'कल जब सम्पूर्ण गांव तथा स्वयं मैं तुम्हारे समक्ष बहुमूल्य उपहारों के अंबार लगा रहा था, तब तुमने उन्हें क्यों अस्वीकार किया? जबकि आज मात्र पाँच रूपये के पारितोषिक हेतु तुम इतने आकुल हो!' बहरूपिया बोला- 'राजन्, क्योंकि कल मैं एक संत का अभिनय कर रहा था। और यदि संतत्व की मर्यादा का पूर्णत: पालन न करता, तो क्या मेरे स्वांग का पर्दाफाश न हो जाता?'

...शेष पृष्ठ 27 पर

गौरवभाव से गद्‌गद कर देती है। आइए इस बार एक ऐसी ही शास्त्रोक्त कथा का अवलोकन करते हैं।

—★—★—★—★—★—

यह कथा आदिकाव्य में वर्णित है। एक बार बालक हनुमान को ज़ोरों की भूख लगी। दोपहर थी। सूर्यदेव अपनी सम्पूर्ण आभा के साथ नभ में उदित थे। बाल हनुमान को वे एक मधुर व चमकीले फल भासित हुए। बस अब विलम्ब कैसा? उन्होंने झट एक ऊँची उड़ान भरी और प्रकाशमान सूर्य को निगल लिया-

जुग सहस्त्र जोजन पर भानू।
लील्यौ ताहि मधुर फल जानू।
(हनुमान चालीसा)

इसी बीच राहु क्रुद्ध हो उठा। उसने इन्द्र से बालक हनुमान की शिकायत की। प्रतिक्रियास्वरूप इन्द्र ऐरावत पर सवार होकर, राहु को सम्मुख रख, हनुमान की ओर बढ़े। हनुमान भयभीत होने की बजाय, आक्रामक ढंग से उनकी तरफ दौड़े। राहु और ऐरावत घबराकर घटना स्थल से नौ दो ग्यारह हो गए। इन्द्र भी भयकंपित हुए। अपनी प्राण रक्षा के लिए उन्होंने हनुमान पर वज्र प्रहार किया। फलस्वरूप हनुमान प्रभावित हुए। उन्हें थोड़ी मूर्छा भी आ गई। पवनदेव अपने मानस पुत्र को हताहत देखकर क्रोधित हो उठे। उन्होंने अपनी गति अवरुद्ध कर दी। इस कारण समस्त देवगण व्याकुल हो गए। ब्रह्मा सहित सभी ने पवनदेव को प्रसन्न किया। हनुमान को अलौकिक वरदान और शक्तियाँ दीं। स्वयं सूर्यदेव ने तो उन्हें अपने प्रकाश का शतांश प्रदान करते हुए एक प्रकाण्ड विद्वान बनाने का वचन दिया।

सो यह एक लघु कथा है, जिसके अंश हमें वाल्मीकि रामायण, हनुमान चालीसा आदि में पढ़ने को मिल जाते हैं। अब यदि इस प्रसंग की कड़ियों का प्रत्यक्ष अर्थ लिया जाए, तो बुद्धि की पाचन क्रिया फेल हो जाती है। जैसे- हनुमान जी का एक ऊँची छलांग लगाकर सूर्य तक पहुँच जाना! वैज्ञानिक बताते हैं कि पृथ्वी से सूर्य की दूरी सवा नौ करोड़ मील है। समझते हैं सवा नौ करोड़ मील? अनुमानतः यदि एक व्यक्ति के हाथ इतने लम्बे हो जाएँ कि सूरज को स्पर्श कर लें, तो उसकी ऊंगलि जलने की सूचना, स्नायु तंत्रों द्वारा, उसके मस्तिष्क को 160 वर्षों के बाद मिलेगी!! जी हाँ, 160 वर्षों के बाद!! और बालक हनुमान उसे एक छलांग भर में नाप गए!!

दूसरा, फ्यूज़न क्रियाओं द्वारा सूर्य के केन्द्र में 1,30,00,000 डिग्री सेंटीग्रेड ताप व ऊर्जा निर्मित होती रहती है। सतह पर तो केवल 6000 डिग्री सेंटीग्रेड व्याप्त होती है, जो सूर्य अंतरिक्ष में विकीर्ण करता है। परन्तु इससे कई हज़ार गुणा ऊर्जा वह अपनी गोलाकार परिधि में ही समेटे रखता है। विचार कीजिए, जिस ऊर्जा की कुछेक

हँसते-हँसते, समझ लें

एक अधेड़ उम्र की महिला ने इंडियन एयर लाइन्स के रिसेप्शन पर फोन घुमाया, पूछा- 'दिल्ली से जापान तक जाने में हवाई जहाज़ कितना समय लगाता है?' उधर रिसेप्शन पर बैठी युवती बोली- 'वन (एक) मिनट!' और इतना कहकर कम्प्यूटर में डली जानकारी को देखने लगी। पर इधर इस अधेड़ उम्र की महिला ने कहा- 'थैंक्यू' और लाइन काट दी। समझे? यही है कहने और समझने का फर्क!

इसी प्रकार, महापुरुषों व शास्त्र-ग्रन्थों के वचन कहते कुछ हैं और हम समझ कुछ बैठते हैं। असल कोताही तो तब होती है, जब ज़रा से आकलन की बिसात पर हम इन सत्य-वचनों को अबड़म-गबड़म घोषित कर देते हैं। सोचिए, वह अधेड़ उम्र महिला भी तो कह सकती थी- 'दिल्ली से जापान- एक मिनट में!! भला यह भी कोई बात हुई! (अर्थात् यह कैसे संभव है?)' ▫▫

प्रतिशत से सम्पूर्ण पृथ्वी व अन्य भी कई ग्रह ताप और प्रकाश में नहा जाते हैं- वह स्वयं कितनी भीषण होगी? और हनुमान जी इस महा-विकराल अत्युष्ण गेंद को निगल गए!! शेष कड़ियाँ भी कुछ कम हास्यास्पद नहीं!

इसलिए ऐसे शास्त्रीय दृष्टांतों के संदर्भ में हमें विवेक द्वारा अंतर्निहित संकेतों और सार को पकड़ना होगा। दरअसल, यह सम्पूर्ण कथा एक उत्कृष्ट काव्य शैली का नमूना है। अलंकारों में गुंथी हुई है। सौर विज्ञान (Solar Science) और उसके अध्ययन की ओर इशारा कर रही है। भारत का वह स्वर्णिम काल सौर विज्ञान के सम्बन्ध में मणिमय था। जो सूर्य सम्बन्धी खोजें हमने आज कुछेक वर्षों पूर्व ही की हैं, वेदों में उन्हें युगों पूर्व दर्ज़ किया जा चुका था। अथर्ववेद (14.1.2) में स्पष्ट लिखा है- **सोमेन-आदित्या बलिनः**- सोम अर्थात् हाइड्रोजन सूर्य के बल का आधार है। जिन सूर्य कलंकों (Sun-spots) को खोजकर हमने आज अपनी पीठ थपथपाई है, उनका वर्णन वेदों के पृष्ठों में सहजतः सुशोभित है- **सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतम्।** (ऋग्. 1.164.14) अर्थात् सूर्य का मंडल रजस् (धूल, धब्बों) से युक्त होकर विचरण करता है। स्वयं महर्षि वाल्मीकी, जो इस हनुमान सम्बन्धित कथा के लेखक हैं, ने भी यह तथ्योद्घाटन किया है- **आदित्ये विमले नीलं लक्ष्य लक्ष्मण दृश्यते।**

ध्यातव्य है कि जो महर्षि सौर विज्ञान का इतना गूढ़ मंत्र अपने ग्रंथ में दर्ज़ कर रहे हैं, क्या वे उसी ग्रंथ में सूर्य तक छलांग या सूर्य को निगलने जैसी ऊलजलूल टिप्पणियाँ लिखेंगे? वास्तविकता तो यह है कि महर्षि वाल्मीकी स्वयं एक उच्चकोटि के सौर वैज्ञानिक थे। हनुमान जी भी बाल्यकाल में इसी सूर्य सम्बन्धी ज्ञान- विज्ञान को उद्यत हुए थे। सूर्य की ओर ऊँची उड़ान वास्तव में उनकी इसी उद्यतता की प्रतीक है। सूर्य की ओर उड़े- यानी सौर विज्ञान को पाने के लिए संकल्पयुक्त और कर्मशील हो उठे।

इसी प्रकार सूर्य को निगलने का अर्थ है कि उन्होंने सौर विज्ञान को पूरी तरह हस्तगत कर लिया। आत्मसात् कर लिया। ज्ञांन अथवा विज्ञान जीवन का एक उत्तम फल ही है। बाल हनुमान को सौर ज्ञान-विज्ञान का फल मधुर और रूचिकर लगा। अतः वे उसके अध्ययन के लिए कर्मठ हो उठे और उसे पूर्णरूपेण प्राप्त भी किया। विचारणीय है, यदि उन्होंने सच में सूर्य को निगला होता तो क्या सूर्यदेव जी उनसे रुष्ट न हो गए होते! परिणामस्वरूप उन्हें श्रापित करते। जबकि कथा-सरिता कहती है कि अन्ततोगत्वा सूर्यदेव ने हनुमान को आशीष देकर प्रकाण्ड विद्वान बनाने का वचन दिया- **तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।** इससे भी स्पष्ट है कि हनुमान जी की उड़ान ज्ञान विषयक थी। विज्ञान-सम्बन्धी थी! विद्वता हासिल करने हेतु थी। सौर-विज्ञान का अध्ययन और एक उन्नत वैज्ञानिक अन्वेषण करने जैसी थी। प्रमाणस्वरूप एक यह मंत्र भी गुणिए-

....सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरि जगाम ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः॥

ये हनुमान... सूर्य के सम्मुख होकर प्रश्न करते हुए, महाग्रन्थों को याद करते हुए, उदयाचल से अस्ताचल तक चले जाते थे। एक तो इस मंत्र द्वारा यह स्पष्ट है ही कि श्री हनुमान का सूर्य से सम्पर्क ज्ञान-विज्ञान के लिए था। दूसरा, वे इस सौर ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करने के क्रम में सूर्य के संग-संग उदयाचल से अस्ताचल तक चले जाते थे। इससे दो आशय उजागर होते हैं। एक तो यह कि वे सूर्य का अन्वेषण करने के लिए उसी की दिशा की ओर उन्मुख रहते। कुछ-कुछ ऐसे, जैसे हमारे आधुनिक विज्ञानी उत्कृष्ट दूरबीनों द्वारा सूर्य पर एककेन्द्रित अथवा एकाग्र होकर किया करते हैं। दूसरा यह कि हनुमान जी अध्ययन में इतने तन्मय और एकचित्त होते कि सुबह से कब शाम हो जाती- उनको कोई सुधि नहीं रहती।

इसी क्रम में उन पर राहु, ऐरावत व इन्द्र का आक्रामक प्रहार हुआ। इन्द्र ने ऐरावत पर सवार होकर और राहु को सम्मुख रख, उन पर धावा बोला। यह भी प्रतीकात्मक ही है। श्रुति में इन्द्र के चौदह अर्थ किए जाते हैं। इन सभी अर्थों का संकलन ब्रह्मविज्ञान के एक पद्य में वर्णित है। उसी के अनुसार इन्द्र का एक रूप है- **इन्द्रा हि... धियो...** अर्थात् इन्द्र मन स्वरूप है। अन्य भी

...शेष पृष्ठ 17 पर

डॉ. कृपाल

मुलट्ठी

मुलट्ठी एक ऐसी औषधि है, जो बहुत ही पुरातन समय से चली आ रही है। ऋषि-मुनियों ने आयुर्वेदिक शास्त्रों में इसकी बहुत महिमा गाई है। चमत्कारी गुणों से भरी यह मुलिट्ठी बहुत ही उपयोगी वनस्पति है, जो भिन्न-भिन्न नुस्खों में प्रयोग की जाती है। यह कुदरत की हमें बहुत बड़ी देन है। पहले समय में लोग अपने घरों में ऐसी जड़ी बूटियाँ लगाते थे, जिससे कई छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज वे खुद ही कर लिया करते थे। आज भी बहुत-सी जड़ी बूटियाँ ऐसी हैं, जो देखने में तो बहुत ही साधारण-सी लगती हैं, लेकिन अत्यधिक गुणों से भरी हैं और उन्हीं में से एक जड़ी बूटी यह मुलट्ठी भी है। इसे बहुत ही कम लोग जानते हैं। इसका नाम यष्टिमधु भी है। यह पंसारी और परचून की दुकान पर आसानी से मिल जाती है।

यष्टिमधु का पौधा 6 फीट ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ अण्डाकार होती हैं और अग्र भाग से नोकीली। इसकी जड़ें गोल, लम्बी, झुर्रीदार तथा फैली हुई होती हैं। इसमें मुख्य तत्त्व ग्लिस्राइज़िन होता है। यह तत्त्व बहुत ही मीठा होता है। इसके अलावा सूक्रोज, प्रोटीन, वसा, रेजीन तत्त्व, 30 प्रतिशत स्टार्च, और 1प्रतिशत एस्पेरीगिन तत्त्व भी इसमें पाए जाते हैं। ताजा मुलट्ठी में 50 प्रतिशत जल होता है। सुखाने पर इसकी मात्रा 10 प्रतिशत रह जाती है। इसकी जड़ों में उड़नशील तेल भी पाया जाता है। इसमें इतने सारे तत्त्वों के होने के कारण ही इसे औषधि के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

लेकिन यह तभी उपयोगी हो सकती है, जब हमें असली मुलट्ठी की पहचान हो। क्योंकि व्यापारी लोग इसमें मिलावट कर देते हैं। असली मुलट्ठी अंदर से पीली, रेशेदार व हल्की गंध वाली तथा स्वाद में मीठी होती है।

निम्नलिखित रोगों में मुलट्ठी का प्रयोग किया जाता है

गले के रोगों के लिए

मुलट्ठी गले के रोगों के लिए बहुत गुणकारी है। जैसे गले का बैठ जाना, मुखपाक (मुँह के छाले), कफ श्वास आदि। मुलट्ठी कण्ठ सुधार वटी में पाई जाती है, जो अरूचि, मन्दाग्नि, स्वरभेद, वमन, व्याकुलता, अजीर्ण, उदरवात, कफ श्वास आदि के लिए उपयोगी है। मुलट्ठी का एक छोटा-सा टुकड़ा मुँह में रखने से खाँसी और गले की खराश से राहत मिलती है। खाँसी के उपचार के लिए जो अनेकों दवाइयाँ तैयार की जाती हैं, उन सबका प्रमुख घटक मुलट्ठी ही होती है।

कफ में

अगर आपकी खाँसी बहुत पुरानी है और कफ इतना सूख गया है कि खाँसने पर भी बाहर नहीं आता, तो उसके लिए 5 ग्राम मुलट्ठी एक गिलास पानी में उबाल लें। आधा रहने पर उस काढ़े को दो भागों में विभाजित कर लें और सुबह-शाम इसका सेवन करें। ऐसा करने से कफ आसानी से निकल जाता है।

काली खाँसी के लिए

मुलट्ठी, सूखे बेल पत्र और अनार के छिलकों को अलग-से जला कर रख लें। फिर पीसकर, एक साथ

मिलाकर एक या दो ग्राम शहद या पानी के साथ दिन में दो बार लें।

जुकाम में

मुलट्ठी, बनफशा, गावजवां, खतमी- प्रत्येक तीन ग्राम, लसुड़े के 10 दाने, अनार के 5 दाने, अधकूट करके 250 ग्राम पानी में डालकर उबालें। आधा रहने पर 2 तोले मिश्री मिलाकर पी लें। इससे तुरन्त राहत मिलती है।

वमन में

कई बार व्यक्ति को घबराहट होती है। उल्टी आने को होती है, लेकिन आती नहीं। ऐसे में रोगी को सिर-दर्द भी होता है। इसके लिए मुलट्ठी का काढ़ा तैयार कर लें। काढ़ा तैयार होने पर उसे ठंडा कर लें। फिर राई को पीसकर इसमें डाल लें एवं मरीज को पीने के लिए दें। इसके द्वारा सारा कफ बाहर आ जाएगा, जिससे व्यक्ति आराम महसूस करेगा।

पेट के रोगों के लिए

अगर पेट में जलन, एसिडिटी की वजह से घबराहट हो रही हो, तो आँवला, मिश्री और मुलट्ठी- तीनों को समान मात्रा में, 1 चम्मच खाना खाने के बाद पानी के साथ लें। उसी समय घबराहट दूर हो जाएगी। अलसर के दर्द के लिए मुलट्ठी बहुत ही गुणकारी है, क्योंकि यह अलसर पर लेप कर देती है जिससे रोगी को बहुत राहत मिलती है। अगर आपके पेट में वात प्रकोप के कारण दर्द होता है, तो मुलट्ठी का काढ़ा तैयार करके ग्रहण करें।

कब्ज़ के लिए

रात को सोते समय 1 चम्मच मुलट्ठी पाउडर लें। सुबह उठते ही आपका पेट साफ हो जाएगा। अगर नहीं होता, तो मुलट्ठी 50ग्राम, सनाय पत्ती 50ग्राम, सौंफ 50ग्राम- तीनों मिलाकर रख लें। फिर 5 ग्राम रात को सोते समय गुनगुने दूध के साथ लें।

कुछ अन्य प्रयोग

1. मुलट्ठी का टुकड़ा मुँह में रखकर चूसने से मुँह के छाले ठीक होते हैं।
2. मुलट्ठी का चूरा शहद में मिलाकर चाटने से भी मुँह को आराम मिलता है।
3. मुलट्ठी की जड़ों को रात को भिगोकर रखने और फिर सुबह उस पानी से गरारे करने से मुँह के छालों से राहत मिलती है।
4. मुलट्ठी शहद में मिलाकर लेने से हिचकी ठीक होती है।
5. मुलट्ठी और लाल चन्दन को पानी के साथ घिसकर लेप करने से दाह रोग में लाभ प्राप्त होता है। ◘◘

पृष्ठ 15 का शेष

क्या हनुमान जी सचमुच...

कतिपय स्थानों पर इन्द्र को 'मन' की ही उपाधि दी गई है। इन्द्र का वाहन ऐरावत है, जो वाहन-वस्तु आदि के लोभ का प्रतीक है। रजोगुण का द्योतक है। राहु प्रमाद, निद्रा-आलस्य आदि तमोगुण का प्रतीक है। स्वाभाविक है, ये सभी एक अध्ययनकर्त्ता के शत्रु हैं। मन, लोभ व प्रमाद, रजोगुण व तमोगुण आदि एक अन्वेषक छात्र की प्रगति के बाधक हैं। उस पर प्रहार करते हैं। उसका मार्ग अवरुद्ध करने की कुचेष्टा करते हैं। कथानुसार श्री हनुमान ने निर्भीकता के साथ उनका विरोध किया।

परन्तु संघर्ष के इस दौर में एक बार वे इनके प्रहार से हताहत भी हो गए। उन पर छाई मूर्छा, ज्ञान-अभ्यास में आए अवरोध की प्रतीक है। परन्तु ऐसे कटिबद्ध और विज्ञानवृत्ति के अन्वेषक को प्रकृति रुकने नहीं देती। ब्रह्माण्ड की समस्त शुभ (देव) शक्तियाँ उसकी सहायता करती हैं। उसे आशीष देकर आगे अग्रसर करती हैं। ठीक जैसा कि कथा के अन्तर्गत छात्र हनुमान के साथ हुआ।

अत: जब भी किसी शास्त्रोक्त कथा को पढ़कर हमारे होठों पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कान फैले, तो हम सावधान हो जाएँ। क्योंकि वास्तव में यह व्यंग्य स्वयं हमारे दृष्टिकोण पर होना चाहिए। जो अभी दिशाभ्रष्ट है। दृष्टिकोण बदलेगा, तो हम मानव-वंश के पूर्वजों और उनकी अमूल्य सम्पत्तियों की कद्र कर सकेंगे। ◘◘

क्या सचमुच भलाई का ज़माना नहीं रहा?

जिज्ञासा- वैसे तो मेरे बाल कच्चे और काले हैं। डैडी के बालों की तरह पककर 'धूप में सफेद' नहीं हुए! पर फिर भी कॉलेज लाइफ के इस दौर तक आते-आते मैं अपना एक अनुभव पूरे दावे के साथ रख सकता हूँ कि आजकल भलाई-वलाई का बिल्कुल ज़माना नहीं रहा। एक तो तुम अपना कीमती समय, पैसा और दिमाग खर्च कर किसी की हैल्प करो और उधर सामने वाला उसकी कोई वैल्यू, कोई कद्र न डाले- बल्कि पहले से ज़्यादा अकड़ने लगे! इसलिए बेकार में रोबिन हुड बनने से क्या फायदा? बेहतर है, मज़े से 'सेल्फ सैन्ट्रिक लाइफ (स्व-केन्द्रित जीवन)' जीओ। क्यों, आपका क्या ख्याल है?

उत्तर- **'अपने लिए जीए तो क्या जीए; जीना उसी का जो जीए औरों के लिए...'** - आपने यह फिल्मी गाना सुना होगा। इसमें किसी भलेमानस का अनुभव छिपा है। खैर, फिल्मी गीतकारों की बात छोड़ो। आपने स्कूल में अपनी हिन्दी पुस्तक- 'बाल भारती' या 'किशोर भारती' में यह दोहा तो ज़रूर पढ़ा होगा-

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

मतलब कि हम सेल्फ सैन्ट्रिक (स्व-केन्द्रित) होकर अगर खुद को ही ऊँचा उठाते गए और खजूर के पेड़ की भांति गगनचुंबी कद पा भी लिया- तो भी क्या? न राहगीर को शीतल छाया दे सकेंगे, न मीठे फल! इसलिए व्यर्थ है ऐसी सेल्फिश (स्वार्थांध) ऊँचाई! इस दोहे में महापुरुषों के अनुभवों की सुरभि है।

अब सवाल है कि किसका अनुभव वजनदार है- हमारा या महापुरुषों का?

ज़ाहिर है, दूसरों की भलाई करना ह्यूमेनिटी है- हमारे मानव होने का प्रूफ है। यह बात, कहीं न कहीं, अंदर से आपकी कॉन्शेन्स (आत्मा) भी जानती है। तभी तो आपने नौजवानी के इस मस्ती भरे पड़ाव पर खड़े होने के बावजूद 'दूसरों की भलाई', 'परोपकार' आदि का मुद्दा उठाया है। बस लगता है कि कभी न कभी भलाई करने की ऐवज़ में किसी ने आपका दिल तोड़ा है। इसीलिए इस मुद्दे को लेकर आपका मन खट्टा है और नज़रिया नकारात्मक है।

लेकिन याद रखें, जब बात सच्चे परोपकार की होती है, तो सब कुछ 'पर' यानी दूसरों पर केन्द्रित होना चाहिए। स्वयं के लिए कोई भाव नहीं रखना चाहिए। आदर्श परोपकार में कोई लेन-देन नहीं होता। केवल देन-देन ही होता है। अगर हमने 'लेन' का भाव रखा, तो फिर वह परोपकार कहाँ रहेगा? 'परोपकार' अपनी गरिमा खो बैठेगा। बस एक सस्ता-सा सौदा बनकर रह जाएगा। इसलिए अनुभवियों ने यह मुहावरा गुना- **नेकी कर कुएँ में डाल**- यानी भलाई कर और भूल जा! उसकी ऐवज़ में 'धन्यवाद' तक एक्सपेक्ट (की चाह) मत कर।

आप जानते हैं, एक दिव्य दोपहर को जीसस क्राइस्ट ने दस कोढ़ियों को चंगा किया था! पर उनमें से कितने उन्हें प्रणाम या भावसुमन तो छोड़ो, एक रूखा सा धन्यवाद अर्पित करने को रुके थे? केवल एक! बाइबल में संत ल्यूक का ब्यौरा पढ़ कर देखो- जीसस मुड़े और अपने शिष्यों से पूछा- 'बाकी के नौ लोग कहाँ गए?' शिष्यों ने बताया कि उनका स्वार्थ पूरा हुआ, इसलिए अब वे गायब हो गए। यह देखकर जीसस केवल मुस्काए और अन्य दीन-दु:खियों का उपकार करने को आगे बढ़ चले। अपने शिष्यों को यह कहते हुए- **Do good unto others** - दूसरों का भला करते चलो।

अब सोच लीजिए, जब जीवनदान देने वाले मसीहा तक को स्वार्थ की रूखाई झेलनी पड़ी, तो हम और आप क्या चीज़ हैं! इसलिए हम जीवन का यह आदर्श बना लें कि परोपकार किसी फल के लिए नहीं, बल्कि परोपकार से मिलने वाली खुशी की एक अंतरानुभूति के लिए करेंगे- **Help for the inner joy of helping.**

मगर यह भी हमेशा याद रखें, प्रकृति कभी आपके हाथ खाली नहीं रहने देगी। आपकी अच्छाई लौटकर वापिस आपके पास ज़रूर आएगी। आपको एक प्रेरणास्पद कहानी सुनाते हैं। स्कॉटलैंड का एक किसान था- फ्लेमिंग। अपने खेत में हल चला रहा था। सहसा उसने सहायता के लिए पुकारती एक आवाज़ सुनी। दौड़कर देखा तो पाया कि एक छोटा सा बालक छाती तक दलदल में धंसा हुआ चिल्ला रहा है। फ्लेमिंग ने जी-तोड़ परिश्रम करके उसे बाहर निकाला और उसका सिर सहलाकर घर जाने को कहा। फिर सहजता से पुनः खेतीबाड़ी में जुट गया।

अगले ही दिन, एक सूटिड-बूटिड जैन्टलमैन उसकी झोंपड़ी के पास खड़ा था। उसने कहा- 'तुमने मेरे बेटे की जान बचाई, इसलिए मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ।'

फ्लेमिंग- नहीं, यह तो मेरा कर्त्तव्य था। फिर इसके लिए इनाम कैसा?

'क्या यह तुम्हारा बेटा है?'- जैन्टलमैन ने फ्लेमिंग के पास खड़े एक फटेहाल बच्चे की ओर इशारा करते हुए पूछा। फ्लेमिंग ने हाँ में सिर हिला दिया।

जैन्टलमैन- एक दिन तुम्हारा यह बेटा तुम्हारी छाती को गर्व से फुला देगा।

इतना कहकर उस भले आदमी ने फ्लेमिंग के बेटे की तालीम का बीड़ा उठा लिया।

कई वर्ष गुज़र गए। यही गरीब बालक वैज्ञानिक अलेग्जैन्डर फ्लेमिंग बनकर विख्यात हुआ, जिसने समाज को पैनिसिलीन का आविष्कार दिया। इस आविष्कार के कुछ माह बाद ही उस जैन्टलमैन का बेटा जानलेवा निमोनिया का शिकार हो गया। जानते हो, उसका जीवन किससे बचा? पैनिसिलीन!

उस जैन्टलमैन का नाम लॉर्ड रैन्डोल्फ था और उसके बेटे का सर विन्सटन चर्चिल। किसी ने खूब कहा है- **'What goes around, comes around.'**- जैसा तुम देते हो, वैसा ही तुम्हें वापिस मिलता है। चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो! चाहे फिर यह फल मिलने में कितना ही वक्त क्यों न लगे! पर प्रकृति अपने पास कुछ नहीं रखती। ब्याज समेत तुम्हें लौटाती है।

एक बात और पल्ले गांठ बांध लो। अगर एक इंसान तुम्हारे उपकार की कीमत नहीं डालता, तो फिर साक्षात् परम-चेतना (Super-Conscience) को हरकत में आना पड़ता है। जीसस अपने शिष्यों को सांत्वना देते हुए कहा करते थे- **Happy are those who long to be just & good, for they shall be completely satisfied... don't tell your left hand what your right hand is doing. And your father who knows all secrets will reward you.**- खुशनसीब हैं वे लोग, जो न्यायप्रिय और भले रहते हैं, क्योंकि उन्हें पूरी तरह संतुष्ट किया जाएगा ...जब तुम किसी पर उपकार करो, छुप कर करो। बाएँ हाथ को भी पता न लगने दो कि दाएँ ने क्या पुण्य कमाया है। तब तुम्हारा पिता, जो सब राज़ों का राज़दार है, तुम्हें अपनी ओर से दिव्य उपहार देगा। ▪▪

What goes around, comes around- जैसा तुम देते हो, वैसा ही तुम्हें वापिस मिलता है।

हम देख रहे
विश्व-शांति के
को होता साव

विश्व में शान्ति कैसे आएगी? ब्रह्म
ब्रह्मज्ञान कहाँ से मिलेगा? दिव्य ज्योति जाग्र

आपने संस्थान के मंचों से बहुत बार यह उद्घोषणा सुनी होगी। यह परिचाय
'विश्व-शान्ति' है। परन्तु हमारे इ
आधार क्या है? इस दुः
हेतु हम कौन सी साध
पर एक बार फिर
इस विश्व-शान्ति
समर्पित सेनानी-
शिष्य-शिष्याएँ, इ

सुश्री भगीरथी भारती

एक बार फिर इंकलाब लाना है,
सोए हुए लहु को एक बार फिर जगाना है।
कौम नहीं, अब मुल्क नहीं,
इस बार पूरे विश्व को एक बनाना है।
एक बार फिर इंकलाब लाना है।

दल-दल में धँस चुके कदमों को फिर निकालेंगे,
ठण्डे पड़ चुके जज़्बों को फिर उबालेंगे।
अब हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं,
इंसान को इंसान बनाना है।
एक बार फिर इंकलाब लाना है।

जोशे-जुनून हो दिल में अब,
होशो-हवास साथ हो।
अमन की ज़मीन पर
क्रान्ति का बिगुल बजाना है।
एक बार फिर इंकलाब लाना है।

मेरा देश ही मेरी माँ नहीं,
पूरा विश्व मेरी माँ है।
बन वराह अवतार हर हिरण्याक्ष से,
धरती को आज़ाद कराना है।
एक बार फिर इंकलाब लाना है।

कभी-कभी समाज
बदले- इस पर
इन्हीं दिनों, मुझे
बनकर मैंने पाया कि
संस्थापक हैं, की वाणी
एक आन्दोलन नज़र आया
एक बार प्रवचन क
की। यही पुरातन संस्कृति प्र
कहा कि सभी को भारतीय
रखा। इसके उत्तर में जो गुरु
प्राच्य। पाश्चात्य संस्कृति
परिणाम है- अशान्ति!
परिणाम है- शान्ति! अ
एक नहीं,

हैं,
स्वप्न
ार! (भाग-2)
न से!
ति संस्थान से!
है कि संस्थान का लक्ष्य
विश्व-स्तरीय मिशन का
य लक्ष्य को साध्य बनाने
कर रहे हैं?- इन्हीं मुद्दों
लकर सामने आ रहे हैं,
शन के ही कुछ और
महाराज जी के प्रचारक
तम्भ के 'मंच' से!

सुश्री त्रिपदा भारती

शांतमयी डगर की तलाश किसे नहीं होती? कौन है जिसे सुसज्जित, श्रेष्ठ और आनंदपूर्ण समाज में जीने की आकांक्षा नहीं होती? सारा समाज नहीं, पर अधिकतर लोग ऐसे ही होते हैं जो अपनी आँखों में शांतमय संसार का स्वप्न समाए रखते हैं। पर यहाँ एक महाप्रश्न है। इनमें से कितने लोग हैं, जो इस स्वप्न को साकार करने का दम रखते हैं? जो देखते तो हैं कि समाज पल-प्रतिपल टूट-बिखर रहा है, समस्याएँ जोंक की तरह उसका खून चूस रही हैं, पर इनमें से कितने हैं जो, समाज की पीर हरने के लिए, स्वार्थ के कीवाड़ों से बाहर निकलकर, एकाध कदम भी उठाते हैं? जो देखते हैं कि मानव जीवन्त होते हुए भी आज प्राण विहीन है। आनन्द का सागर होते हुए भी सुख के एक कतरे के लिए तरस रहा है। भीतर दिव्य प्रकाश की आभा है, पर फिर भी अंधेरों में भटक रहा है। अपने आप से विलग है और इसी विलगता के कारण निरंतर दु:खों के भंवर में जा रहा है। यह सब देखते और समझते हुए भी, हममें से कितने हैं जो सुधार लाने का बीड़ा उठाते हैं? अजी बीड़ा तो छोड़िए, कितने हैं जिनका हृदय, दम तोड़ती मानवता को देखकर, चीत्कार करता है और कराह कर सवाल पूछता है-

उठ रही है सड़ांध समाज के व्यवहार से
जल रही है मानवता, मानव के ही अत्याचार से
बन गये विनाशक, वंशधर ब्रह्म के सभी
वृद्धि ये आतंकवाद की खत्म होगी क्या कभी?
अभिशापित यह समाज हमारा, क्या श्राप मुक्त हो पाएगा?
बताओ, अब क्या कोई सवेरा इस धरा पर आयेगा?

ईमानदारी से कहूँगी, मैं भी पहले कोई ऐसी दार्शनिक दृष्टि या विचारधारा वाली नहीं थी। न ही समाज के प्रति कुछ गहरा चिन्तन था। न ही मानवता के लिए कोई गंभीर भावना या दर्द। बस हाँ, खकर लगता था- 'ये सब क्या है? ये कैसे लोग हैं? कैसा समाज है?...ये सब ठीक नहीं है। इसे बदलना चाहिए।' पर यह बे-ठीक कैसे ही [illegible]ा।

व्य ज्योति जाग्रति संस्थान का संदेश मिला। संस्थान के विश्व-शान्ति के लक्ष्य से परिचय हुआ। इस दिव्य ज्योति परिवार की सदस्या क ऐसा कारवाँ है, जो निरंतर समाज-कल्याण की अलख जगा रहा है। मैंने **सर्व श्री आशुतोष महाराज जी**, जो इस संस्थान के न व उत्साहवर्धक शब्दों की झंकार पायी। उनके व्यक्तिगत आदर्शों से भी विश्व-शान्ति की सुगन्धि आती मिली। उनका प्रत्येक कर्म

श्री गुरु महाराज जी ने अपने विचारों में कहा था- 'हमें ज़रूरत है जगतगुरु कहलाने वाले इस महान देश की संस्कृति से पुन: जुड़ने न विश्व में प्राणों का संचार करती रही है और आगे भी कर सकती है।' पर उसी समय मेरे मन में एक बात कौंधी, 'गुरुदेव ने ऐसा क्यों से जुड़ने की ज़रूरत है, जबकि प्रत्येक देश की अपनी-अपनी संस्कृति होती है!' यही प्रश्न एक दिन मैंने गुरु महाराज जी के सामने जी ने कहा, वह केवल विश्व-शान्ति के कारवां का नायक ही कह सकता है। उन्होंने कहा- 'एक पाश्चात्य संस्कृति होती है तथा एक भोग है और भोग का अनिवार्य परिणाम है- अंधी दौड़, वासनापूर्ण जीवन, छल-कपट, द्वेष, स्वार्थ जैसे विकार और इन विकारों का तरफ, प्राच्य संस्कृति का ध्येय है- त्याग। त्याग का अनिवार्य परिणाम है- प्रेम, दया, सहनशीलता आदि सद्गुण और इन सद्गुणों का बताओ, जब हमारा उद्घोष विश्व शान्ति का है तो हम समाज को किस संस्कृति की ओर प्रेरित करेंगे?'

कर महाराज जी के अनेकों ऐसे वैज्ञानिक, उदार और संकल्पवान आदर्शों को जाना है। इसलिए आज पूर्ण विश्वास है कि जिनकी

एक-एक सोच अपने आप में शान्ति के लक्ष्य-भेदन की क्षमता रखती है, उन्हीं के द्वारा इस धरा पर शान्तिमय युग की स्थापना होगी। एक अपूर्व, महिमामण्डित विश्व का निर्माण होगा।

आप चाहें तो इसे एक बेटी की अपने पिता के प्रति गर्व-भावना मान सकते हैं। पर सच मानिए कि यह भावना अंधी या कल्पित नहीं है। मैं आज स्पष्ट देख रही हूँ कि समाज के जिस-जिस कोने में उनके आदर्शों और ज्ञान की रोशनी जा रही है, वहीं-वहीं अब रजनी समाप्त होती हुई जान पड़ रही है। जड़ता धीरे-धीरे दूर हो रही है। जो अंधे हैं, वे ही शायद इस परिवर्तन को देख नहीं सकते और जो विकृत बुद्धि के हैं, वे ही समझ नहीं सकते। किन्तु अब कोई भी इस प्रवाह को रोक नहीं सकता। क्योंकि असाधारण शक्ति से सम्पन्न यह कारवां अब आगे-ही-आगे बढ़ चला है। **सर्व श्री आशुतोष महाराज जी** की कृपा के हस्त तले इस प्रवाह की प्रचण्डता किसी के रोके रूक नहीं सकती। जो इसके लिए मिथ्या प्रयास करते हैं, वे कुछ समय के लिए उत्साहित हो सकते हैं। लेकिन शीघ्र ही उन्हें पता चलेगा कि यह प्रवाह उनके बनाए गए बांधों को तोड़ता हुआ, स्वयं का विस्तार करता ही रहेगा।

देखो, चमका एक अद्‌भुत रवि,
कहते हैं दिव्य ज्योति जिसे सभी।
ज्ञान का प्रकाश फैलाकर, जन-जन को हरषा रहा,
यूँ अज्ञानता का तिमिर इस धरा से जा रहा...
अब न होगा दीन दुःखी कोई, रहेगी न मानवता सोई।
बहकर इस प्रवाह में, सभी हैं यह गा रहे,
आशुतोष महाराज जी नया सवेरा हैं ला रहे।

सुश्री मनस्वनी भारती

बदलेंगे धरती की
तस्वीर को हम,
बदलेंगे इस आसमां को।
हम दिव्य ज्योति से रोशन करेंगे,
अंधेरों भरे इस जहां को।

यह इतना बड़ा दावा तभी कर पाये, जब युगद्रष्टा **श्री आशुतोष महाराज जी** के लहराते परचम की छांव मिली। इससे पहले धरती और आकाश की तस्वीर को बदलने की बात तो बहुत दूर- अपने खुद के जीवन की, अपने घर की ही तस्वीर को बदलने की कल्पना तक, सपने में भी नहीं कर सकते थे। मैंने जब से आँख खोली थी, तभी से देवी जैसे स्वभाव वाली अपनी माँ की आँखों में आँसू ही बहते देखे थे। कारण था, घर में हमेशा रहने वाला कलह-क्लेश, लड़ाई-झगड़ा। पिताजी का स्वभाव थोड़ा सख्त था, जो खाने-पीने के बाद और अधिक कड़ा हो जाता था। कई बार तो घर का माहौल ऐसा बन जाता कि दूर-दूर तक कोई भी अपना नज़र नहीं आता। यह सब देखकर बार-बार मन में एक ही बात आती कि काश मैं लड़का होती तो कुछ कर पाती, क्योंकि मेरा कोई सगा भाई नहीं है। इसलिए मैं परमात्मा के आगे मंदिर और गुरुद्धारों में जाकर प्रश्न करती कि प्रभु क्या हम भी अपने जीवन में कभी शान्ति अनुभव करेंगे? क्या हमारे घर में भी कभी सुख-शान्ति की लहर दौड़ेगी? वो कहते हैं न कि ईश्वर के घर में देर है, अंधेर नहीं। उसी अदृश्य शक्ति ने हमारी भी प्रार्थना सुन ली। उसे पूरा करने के लिए वह प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने आई, **दिव्य ज्योति जाग्रति संस्थान** के संचालक व संस्थापक **श्री गुरु आशुतोष महाराज जी** के रूप में!

सबसे बड़ी बात, उनका पहला संदेश मेरे पिताजी को ही मिला। किसी ने उन्हें बताया कि मलको की डबवाली मलोट में एक सत्संग होता है और कहते हैं कि वहाँ ईश्वर के दर्शन करवाए जाते हैं। यह एक आश्चर्यपूर्ण वाक्य था, मेरे

पिताजी के लिए! इस एक बात ने उन्हें आकर्षित किया और वे उस व्यक्ति के साथ सत्संग में चले गए। वहाँ दिए गए प्रवचनों ने उन्हें काफी प्रभावित किया। दूसरे रविवार को पिताजी मुझे भी अपने साथ ले गए। जब मैंने वहाँ सत्संग सुना तो मुझे बहुत ही अच्छा लगा। विचार तो अच्छे थे ही। परन्तु मुझे ज़्यादा खुशी तो इस बात की थी कि मेरे पिताजी कुछ-कुछ बदलते नज़र आ रहे थे। जैसे ही सत्संग समाप्त हुआ, हम उठकर स्वामी जी के पास गए। मैंने उनसे कहा- 'भैया जी! मुझे सत्संग बहुत अच्छा लगा। किन्तु मैं पूछना चाहती हूँ कि क्या आप कोई ऐसा उपाय बता सकते हैं, जिससे हमारे घर में शान्ति और सुख आ जाये?' स्वामी जी मुस्कुराते हुए बोले- 'क्यों नहीं? तुम अपने घर की बात करती हो! महाराज जी तो विश्व में शान्ति लाने का मिशन लेकर चल रहे हैं। पूरे विश्व को सुख-शान्ति व आनन्द देने के प्रयास में हैं।' उस समय मेरे मन में एक क्षण के लिए तो विचार आया कि कहाँ विश्व और कहाँ इस आश्रम के थोड़े-बहुत लोग! फिर यह कैसे सम्भव है? किन्तु मुझे तो ज़्यादा मतलब अपने घर से था। क्योंकि तब संकीर्ण और स्वार्थी बुद्धि होने के कारण मैं उससे अधिक सोच ही नहीं सकती थी।

फिर बहुत जल्दी ही पिताजी को ज्ञान मिल गया। ज्ञान लेने के बाद उनमें ऐसा परिवर्तन आया कि आँखों देखी पर भी विश्वास न हो। धीरे-धीरे पूरे परिवार को ज्ञान मिल गया। घर में शान्ति रहने लगी। और तब मुझे समझ आया, जैसा कि श्री गुरु महाराज जी भी अक्सर बताया करते हैं- एक मनुष्य अपने आप में एक लघु विश्व ही तो है। यदि उसमें शान्ति का अवतरण हो जाये, तो उसके माध्यम से परिवार को शान्त किया जा सकता है। इन्हीं परिवारों के समूह से समाज, समाज से राष्ट्र और अन्तत: विश्व को शान्त किया जा सकता है-

Cluster of Individuals form a Family. Cluster of Families form a Society. Cluster of Societies form a Nation. Cluster of Nations form a World. So establish Peace in Individuals, the World will be in Peace.

किसी के कहने की बात नहीं, ऐसा मैंने स्वयं अपनी आँखों से अपने जीवन में प्रत्यक्ष देखा। जब पिताजी को ज्ञान के द्वारा अन्दर में शान्ति मिली, तो हमारे घर का वातावरण भी शान्त रहने लगा। हमने आगे लोगों को सत्संग सुनाया, जिससे अन्य कई परिवार इस मिशन से जुड़े। उन्होंने आगे अपने रिश्तेदारों, दोस्त-मित्रों को सत्संग सुनाया। ऐसे ही क्रम आगे बढ़ता गया।

सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, उसका असर राष्ट्र पर हो।
जाग उठे विश्व का मानस, ऐसी जागृति हर घट में हो।

गुरुदेव अक्सरां कहते हैं कि एक मानव मन की शान्ति ही विश्व शान्ति का आधार होती है और मानव मन को शान्त करने का कारगर सूत्र- ब्रह्मज्ञान है उनके पास! वैसे भी, मैंने स्वयं महाराज जी को दिन-रात, अपना सुख-आराम त्यागकर, हर दीन-दु:खी, पीड़ित को सुख-शान्ति प्रदान करने में संलग्न देखा है। अगर मेरी माँ जैसी लाखों माताओं के आँसू किसी ने पोंछे हैं, उन्हें सुखद मुस्कान प्रदान की है, तो इन्होंने ही! अगर दो भाईयों का चूल्हा एक कर, बंधुत्व की भावना उनमें भरी है, तो इन्हीं गुरुदेव और इनकी रहनुमाई ने! नि:संदेह ऐसे में विश्व-शांति भी इनका कोई कल्पित स्वप्न नहीं!

स्वामी धीरजानंद

जिस समय **दिव्य ज्योति जाग्रति संस्थान** का कारवां अपनी मंज़िल 'विश्व शांति' बताता है, तो अकसर मैं देखता हूँ कि बुद्धिजीवियों के होठों पर एक व्यंग्य भरी मुस्कान तैर जाती है। बहुत से किन्तु-परन्तु दागे जाते हैं। सफलता-असफलता, सम्भव-असम्भव के पहलू उठाए जाते हैं। परन्तु ऐसा सोचना या करना कितना उचित है- यह जानने के लिए मैं आपको पूर्व युगों में एक सरसरी दृष्टि डालने का सुझाव दूँगा।

...श्री राम की वानर सेना समुद्र तट पर अवरुद्ध हुई बैठी थी। माँ सीता ने केवल एक माह तक का समय दिया हुआ था। उससे पहले-पहले लंका पहुँचना था। अत: समय भी कम था। दूसरा, लंका तक फैला विशाल, तूफानी सागर! एक-एक योद्धा असंभव भाव से जूझ रहा था। मगर आगे क्या हुआ? इतना भगीरथी कर्म मात्र छह दिन में पूर्ण हुआ। पुल भी बना। सम्पूर्ण सेना भी पार हुई। लंका पर चढ़ाई भी की गई।

फिर युद्ध के दौरान जब लखन मेघनाथ के बाण से मूर्छित पड़े थे, तब पुन: असफलता और असंभाव्य की पदचाप सुनाई दी। विपक्षियों के वैद्य- सुषेण को लाना था- असम्भव! पर सुषेण को घर समेत ही उठा कर लाया गया। लेकिन फिर अल्प समय में, बहुत दूर पर्वत पर स्थित एक संजीवनी बूटी लानी थी- पुन: असंभव! रास्ते में कालनेमि ने अपना कुचक्र चलाया। भरत जी के बाण ने व्यवधान डाला। परन्तु अंतत: क्या हुआ? बूटी भी आई। लखन भी सजीव हुए।

कहाँ एक पक्ष में वानर और दूसरे में रावण के प्रबल दैत्य-सेनानी, आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से लैस! परन्तु इसके बावजूद भी दिग्विजयी रावण पराजित हुआ। लंका पर धर्म की केसरिया पताका फहरी। चहुँदिश शान्ति और धर्म की स्थापना हुई। हर असंभव संभव बनता गया। असफलताओं ने सफलताओं का शृंगार किया।

कहने का अर्थ? जब-जब भी किसी महान लक्ष्य का अनुसंधान हुआ, तो बीच में बहुत बार ऐसे दौर आए जब समय और संसार उसका मज़ाक उड़ाता दिखा। आज भी यही हो रहा है। पर ऐसे में हमें यह देखना है कि आखिर हमारा आधार क्या है? मार्ग कैसा है? संकल्प कितना है? लक्ष्य क्या है? और सबसे बढ़कर कि हमारा निर्देशक कौन है? किसके निर्देशन में हम आगे बढ़ रहे हैं? यदि हमारा आधार सत्य है, हमारा मार्ग धर्मयुक्त है, संकल्प में सत्य का ईंधन है, लक्ष्य नि:स्वार्थ और लोक-कल्याण का है और निर्देशक स्वयं सत्य का साकार-स्वरूप एक ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु है- फिर शंका कैसी? किस युग में- ऐसा कौन सा कारवां हुआ है, जो इन सब अलंकारों से सम्पन्न हो और फिर भी हारा हो?

आज दिव्य ज्योति के कारवां के पास भी तो मैं ये सब साजो-शृंगार स्पष्ट देख पा रहा हूँ। सर्वप्रथम सत्य और धर्म का मूल- 'ब्रह्मज्ञान' हमारे पास है। ऐसा ज्ञान जिसे पाते ही त्रिकुटि में ईश्वर का दर्शन होता है। अनेक-अनेक दिव्य अनुभूतियाँ होती हैं। मन के विकार, निकृष्ट विचार, दुर्गुण, मलिनताएँ समाप्त होती हैं। व्यक्तित्व में धर्म के एक-एक गुण की कली चटकती है। दूसरा, हमारा लक्ष्य- परमार्थ, पूर्ण निष्काम- विश्व-कल्याण का है। तीसरा, हमारे निर्देशक, हमारे सद्‌गुरु?? वे कैसी हस्ती हैं- यह हमारी अन्तरात्मा पूर्णरूप से जानती है। एक बार एक साधक चिन्तित था। दूसरे साधक ने कारण पूछा। पहले साधक ने कहा- 'यह इतनी गहन रात्रि देख रहे हो? इसमें प्रकाश होगा तो कैसे?' दूसरा साधक- 'तू चिंता मत कर। धैर्य रख। देख, क्षण भर में सूर्य उदित होने वाला है। सवेरा आयेगा, तो अंधेरा पंख लगाकर छूमंतर हो जायेगा।' पहला साधक- 'एक अकेला सूर्य क्या कर लेगा, जब ऐसा रजत चांद और इतने असंख्य तारे भी मिलकर कुछ नहीं कर पाए!' दूसरा साधक- 'तू शायद सूर्य-प्रकाश की प्रखरता से अंजान है। जो काम असंख्य टिमटिमाते तारे नहीं कर सकते, वह उगते सूर्य की लालिमा तक कर दिखाती है।'

कहने का मतलब कि आज समाज में इतने असंख्य प्रयास, इतनी कोशिशें हो रही हैं- पर फिर भी शांति नहीं! दरअसल, अब अंधकारमय विश्व को एक पूर्ण सद्‌गुरु रूपी सूर्य चाहिए। धर्मशास्त्र कहते हैं- सद्‌गुरु एक परम सूर्य होता है। मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि **श्री सद्‌गुरु आशुतोष महाराज जी** भी भुवन-मंडल के भास्कर हैं। यह अतिशयोक्ति या बड़बोल नहीं! आप स्वयं देख सकते हैं। अभी तो इस सूर्य की थोड़ी-सी लालिमा ही छाई है, पर समाज के कितने ही क्षेत्रों और वर्गों से अंधेरा छटने लगा है।

Sushree Om Prabha Bharati

From dawn to dusk if there is one entity wherein I have seen a true reflection of altruism – He is **Shri Ashutosh Maharaj Ji.**

If there is one name that appears on my lips, and whom I can call an absolute embodiment of sacrifice – He is **Shri Ashutosh Maharaj Ji.**

If there is someone who has lived the dictum "Vasudhaev Kutumbakum" – He is **Shri Ashutosh Maharaj Ji.**

Relentless hard work, rejuvenating spirit, unbounded compassion... if there is such a being in whom all these merits subsist in toto - He is **Shri Ashutosh Maharaj Ji.**

To give a tangible form to His Mission of Global Peace, **Shri Ashutosh Maharaj Ji** established DJJS – Divya Jyoti Jagrati Sansthan. There was only one ashram at the time of its inception. But today, with its branches spread worldwide, DJJS is moving like a whirlwind. The ashram sites, that appear gigantic in size, become dwarf-sized vis-à-vis the number of devotees who are growing by leaps and bounds. It would be no exaggeration to say that the Mission is expanding like the 'Matsya' incarnation.

Be it social, spiritual, cultural, humanitarian, or environmental, making a striking headway in all, the Mission has left no field untouched. To measure the vast span of the multifarious activities undertaken by the Sansthan is nothing but an exceedingly tedious task. And, what is even more difficult... well, impossible is to comprehend and measure the extent to which the lives of countless have been changed; with peace restored in the very substratum of their existence. Why do I say this?!?...

Maharaj Ji has left no stone unturned for revolutionising women. Once His Highness, **Shri Ashutosh Maharaj Ji** said, 'Meera ke samay mein to ek hi Meera thi, ab to ghar ghar mein Meera hogi', that, 'During Meera's time, there was only one Meera but now there will be a Meera in every house.' Today, I actually see Maharaj Ji's words coming alive when I find our initiated mothers and sisters, being no less than the revolutionary sparks, sending a clarion call of reformation to the society. Then why wouldn't I say the mission is changing lives?

Where no iron bars, no severe punishment, no judicial law could kindle a flame of compassion or kindness; the down trodden individuals in whom none could expect any ray of hope for reformation-those hardcore criminals are transformed beings today and have become an exemplary of reformation. Napoleon also said- 'Revolutions are like the most obnoxious dung heaps, which bring into life the noblest vegetables.' No doubt, it's a reformation, which seemed perilous to conduct and difficult to take in hand. But DJJS is revolutionizing these individuals, leading them from brutality to nobility, destruction to construction, and transforming them from sinners to winners! Then why wouldn't I say the mission is changing lives?

Those individuals, for whom alcohol/drugs were an essentiality to even digest their food, they, today, relish the blissful nectar during meditation. They drink the ambrosia of ecstasy. Their torturous drug-surfeited life has been converted to a bliss-imparting joyful life! Then why wouldn't I say the mission is changing lives?

Also, the youth – indulged in empty, gibberish talks, never tired of singing nonsensical songs-today these young spirits are found absorbed in devotion, sermonising in-depth metaphysical discourses, vocalizing bhajans and chanting Vedic mantras. Those hands that used to rise to injure and harm others today join in utmost devotion, and the heads bow out of humility. Isn't this an unexpected change?

DJJS is imparting every person with his piece of peace by inculcating that ancient, eternal, and transcendental knowledge (**Brahm Gyan**). The land, which was once being destroyed by weeds of avarice, is today becoming a garden blossoming with flowers of love and compassion. The Mission is on its way of weaving a beautiful fabric of integrity, with all individuals that belong to different creeds and cultures knit into one Global Family.

That's why I feel like saying-

Demolishing the weapons of hatred, We will create a land that is sacred.
One day the gentle winds of Global Peace will blow,
DJJS will toil hard until love in every heart will glow.

चैट विन्डो (info@divyajyoti.org)

Call Plug-ins Webcam Games Send File Photos Conference
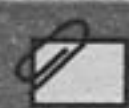
चैट विन्डो

दिव्य ज्योति- हैलो! दिव्य ज्योति जाग्रति संस्थान ऑनलाइन की ओर से आपके लिए एक संदेश है।

युवा- कहिए...

दिव्य ज्योति- अपने भीतर ईश्वर का साक्षात्कार करें और प्रैक्टिकली स्पिरिचुअल (आध्यात्मिक) बनें...

युवा- थैंक्स! पर एक बात बताइए... भगवान को देखना, आध्यात्मिक होना, वगैरह-वगैरह...- ये सब किसलिए?- इसीलिए न कि हम सुखी हों... हमारे जीवन की गाड़ी खुशी और संतुष्टि की पटरियों पर दौड़ती रहे...

दिव्य ज्योति- बिल्कुल सही!

युवा- तो फिर मुझे न तो ईश्वर को देखने की ज़रूरत है और न ही प्रैक्टिकली स्पिरिचुअल बनने की। क्योंकि, मेरी लाइफ में ऑलरेडी भरपूर मात्रा में सुख भी है और खुशी भी। मेरी गाड़ी बहुत बढ़िया रफ्तार से आनन्द की पटरियों पर दौड़ रही है। मैं नहीं समझता कि मुझे किसी चीज़ की कमी है...

दिव्य ज्योति- अगर सच में ऐसा है, तो हम तहेदिल से आपको बधाई देते हैं। क्योंकि, आपने अपने जीवन में उस महान शिखर को छू लिया है जिस तक पहुँचने की आस में लोग न जाने किन-किन शॉर्टकट्स को अपना रहे हैं, पर असफल हो रहे हैं ...हाँ, बस एक बार यह ज़रूर चैक कर लीजिएगा कि कहीं आपका केस भी प्लेटो की गुफा में कैद लोगों जैसा तो नहीं!

युवा- गुफा? कैद लोग?? मतलब???

दिव्य ज्योति- प्लेटो अक्सर अपनी स्पीच में कुछ लोगों का ज़िक्र किया करते थे, जो एक गुफा में ही पैदा हुए और ताउम्र वहीं पर रहे। वे सभी लोहे की जंज़ीरों में जकड़े हुए थे। इसीलिए उनके लिए अपने स्थान से हिल तक पाना भी बेहद मुश्किल था। काफी मशक्कत करके वे एकाध कदम ही चल पाते थे। गुफा की दीवारों पर लगी काई उनका भोजन थी और ज़मीन पर फैला पानी प्यास बुझाने का इकलौता जरिया! बस यही उनकी दुनिया थी... उनके हिसाब से एक सुखी और आनन्दमय जीवन... लेकिन एक दिन, सौभाग्यवश, जंज़ीरों में जकड़े एक कैदी का पाँव लड़खड़ाया और वह गुफा की दीवार से ज़ोर से जा टकराया।

युवा- सौभाग्यवश?!? उस बेचारे को कितनी चोट लगी होगी और आप उसे सौभाग्यशाली बता रहे हैं!!

दिव्य ज्योति- हाँ, वह इसलिए कि दीवार के साथ लगी टक्कर ने उसके सामने एक नई दुनिया खोलकर रख दी।

युवा- मैं आपकी बात समझा नहीं!

दिव्य ज्योति- दरअसल, जब वह दीवार से टकराया, तब उस जगह से पत्थर का एक टुकड़ा ज़रा सा खिसक गया... उस छोटे से छेद में से झांककर जो नज़ारा उसने देखा, वह जन्नत से कम न था! नीला आकाश, सूर्य की रोशनी से जगमग फसल, कलकल बहती नदी, चहचहाते पक्षी... वह बिना पलक झपके बस इस सुन्दर दुनिया को निहारता ही रह गया... क्योंकि ऐसा सुन्दर दृश्य उसने आज से पहले कभी नहीं देखा था। जिस गुफा को वह सब कुछ मान कर बैठा हुआ था, आज उसे पता चला कि इस गुफा से हज़ारों गुणा सुंदर और भी बहुत कुछ है जिसे वह नहीं जानता...

चैट विन्डो (info@divyajyoti.org)

युवा- ओ गॉट युअर प्वाइंट! तो आप यह कहना चाहते हैं कि इस दुनिया के अलावा भी कोई दुनिया है, Alice के Wonderland जैसी, जिसे हम नहीं जानते?

दिव्य ज्योति- जी, पर उसे Alice का Wonderland नहीं, बल्कि God का Divineland ज़रूर कह सकते हैं... जो कहीं ज़्यादा खूबसूरत और आनन्दमय है, बाहर की इस दुनिया से....जिसे आप देखते हैं, जिसमें सुख ढूँढ़ते हैं और जिसे सब कुछ समझते हैं।

युवा- क्या प्रूफ है?

दिव्य ज्योति- वही, जैसा कि हमने शुरू में कहा था... प्रैक्टिकल स्पिरिचुएलिटी यानी आंतरिक जगत का प्रत्यक्ष साक्षात्कार (Direct Perception)!

युवा- सच कहूँ, बुरा मत मानिएगा। पर मुझे आपकी बातें Dream World (स्वप्न जगत) की सुनहरी कल्पना मालूम होती हैं।

दिव्य ज्योति- आप ही की तरह बहुत से लोगों के भी पहले यही कमैंट्स थे... पर आज वही लोग डंके की चोट पर कहते सुनाई देते हैं कि उन्होंने एक नई दुनिया अपने ही अंदर देखी है...एक अलौकिक दुनिया!

...आप भी उसे जान और देख सकते हैं। और सच कहें तो, इस अंदरूनी संसार में गोता लगाने पर ही आप समझ पाएँगे कि सच्चा सुख-शान्त-आनन्दमय जीवन कहते किसे हैं!

युवा- अगर ऐसी बात है, तो फिर मैं भी प्रैक्टिकली स्पिरिचुअल बनना पसंद करूँगा!!

दिव्य ज्योति- ज़रूर! क्यों नहीं? आप दिव्य ज्योति जाग्रति संस्थान में सादर आमंत्रित हैं!

पृष्ठ 12 का शेष

प्रश्नोत्तरी

कहने का तात्पर्य यह है कि जब एक साधारण सा बहरूपिया चुने हुए पात्र की इतनी सटीक अदाकारी कर सकता है, तो क्या वह प्रभु- परम अलौकिक जादूगर- अपने किसी अभिनय में त्रुटि करेगा? नरसी के संदर्भ में लीलावान प्रभु ने भी अपने रोल पर खरा उतर कर दिखाया। परन्तु इन दोनों कलाकारों में एक वृहद् अंतर है।

एक सांसारिक बहरूपिया अपने स्वार्थवश, धन-प्राप्ति के लिए स्वांग रचता है। पर दीनबंधु केवल और केवल भक्त के कल्याण हेतु बहुरूप धारण करते हैं। नरसी का रूप धरकर प्रभु ने उनके जीवन में वैराग के सुरभिमय फूल खिलाए। एक धन-लोलुप, स्वार्थी सेठ नरसी को उच्चकोटि का भक्त नरसी बना दिया। अंततः उन्हें अपने दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार भी कराया। जब भक्त नरसी को प्रभु की यह सारी लीला ज्ञात हुई, तो वे प्रेमपगे भाव से प्रभु को 'बहरूपिया' कह बैठे। शास्त्रों का भी वचन है- **एकं रूपं बहुधा यः करोति** अर्थात् जो तात्विक दृष्टि से एक रूप, एक रस है, वही परब्रह्म (जीवात्माओं के कल्याण हेतु) बहु प्रकार के रूपों में साकार होता है।

अतः भगवान बहरूपिया ही तो हैं। यह किंचित भी अपशब्द या अनुचित संबोधन नहीं! आक्रोश भी नहीं, बल्कि यह तो नरसी जैसे प्यारे भक्तों का प्रेमाधिकार, अपनापन और मीठा भाव है।

गुरु मुरीद - बुल्लेशाह (भाग-35)

(आपने पिछले अंक में पढ़ा कि आस्ताने का फाटक बंद रहा। इसलिए गुज़रते वक्त के साथ बुल्लेशाह की सारी उम्मीदें गुमराह हो गईं। अब बुल्लेशाह के सामने दो ही रास्ते थे। एक सैयदों की आलीशान हवेली को जाता था। दूसरा खुदकुशी का था। मगर दिमाग और रूह की लम्बी जिरह के बाद, बुल्लेशाह ने इन दोनों ही रास्तों को सिरे से नकार दिया। एक तीसरा रास्ता ईज़ाद किया- जुदाई की आग झेलकर, खुद को उसमें सेक-सेक कर, ऐसी आली इबादत करने का कि उसकी आखिरी सांस निकलने से पहले इनायत बाहें फैलाने को मजबूर हो जाएँ। अब आगे...)

मरकर भी दिखा देंगे तेरे चाहने वाले,
मरना तेरे बिन जीने से बड़ा काम नहीं है।

आज मुरीद ने मरने से भी बड़ा और ज़ोखिम भरा काम चुन लिया था। मुर्शिद के बगैर ज़िन्दा रहने का दम भर लिया था। रूह के बगैर अपना बे-जान जिस्म ढोने की हिम्मत कर दिखाई थी। वह फाटक की परली तरफ अपनी रूह, अपनी सांसे, अपना चैनो-अमन, दिलो-जान- सब छोड़कर निकल पड़ा।

अब उसके पास जीने का कोई साजो-सामान, कोई आसरा नहीं था। जीने की तमन्ना भी नहीं थी। मगर फिर भी उसे जीना था- एक रूहानी मकसद के लिए! इसलिए वह मुर्दा-सा बना बढ़ चला, दुनिया के चहल-पहल भरे बाज़ारों की ओर... कदम बेहद बोझिल! मानो किसी भारी ठेले को बगैर पहियों के घसीटना पड़ रहा हो। हुलिया किसी लुटे-पिटे बेचारे जैसा! आँखें बुझे चिराग सी, जिनके आँसुओं का तेल जल-जल कर खत्म हो चला था। होठों पे सूखी पपड़ी जमी हुई! मानो सीने की बेइंतहा प्यास उन पर अपना निशां छोड़ रही हो।

इस बेचारगी और गमगीनी के आलम में वह बाज़ारों से गुज़रता गया। खूब शोरगुल, हँसी-ठट्ठा था वहाँ। दुकानदारों की लुभावनी आवाज़ें! ग्राहकों के नाज़-नखरे और चटकारे! माया अपने पूरे रंग-ओ-शबाब में थिरक रही थी। मगर सोचो, जिसे रूहानी गम के घने घेरों ने घेरा हो, उसे दुनियावी हवा भला क्या छुए? जिसे इश्क ने जाम-ए-दर्द पिलाया हो, मौला की उल्फत में जो पहले ही बहक रहा हो, उस पर नशीली माया के फीके नशे क्या जादू फेकेंगे? वो अर्ज़ किया है न-

ऐ मेरी जान के दुश्मन, तुझे अल्ला रखखे।
हम भी पागल हैं, जो उस शख्स से हैं वाबस्ता,
जो न किसी और का होने दे, न अपना रखखे।

दुनिया में धक्का लगता है, तो निगाहें किसी और हमदर्दी कंधे को ढूंढ़ ही लेती हैं। मगर गुरु मुरीदों! साईं का रिश्ता ऐसा चलता-फिरता नहीं है। यहाँ अगर एक ओर जुदाई के धक्के हैं, तो दूसरी ओर एक अनोखी, मुहब्बत भरी जकड़न! अनोखी इसलिए, क्योंकि वह जितने धक्के खाती है, उतनी मजबूत होती जाती है। उसके दायरे उतने ही सिमटते जाते हैं- बल्कि जो गैर पहले अंदर बसे होते हैं, वे भी बाहर दफा हो जाते हैं। साईं के अलावा कोई अपना नहीं रह जाता।

तभी आज बुल्लेशाह बाज़ार की भीड़ भरी गलियों से भी तन्हा सा गुज़र रहा था। उसके ज़ेहन की आँख मुंदी हुई थी, कान बहरे और जुबान गूंगी थी। बस एक तवज्जोह ज़िन्दा था कि अपने इनायत को कैसे मनाऊँ। क्या करूँ कि वे रीझ जाएँ?

इसी उधेड़बुन में शाम हो चली। दिन भर चलते-चलते सूरज की टांगे थक गईं। वह निढाल होकर ढल गया। मगर इधर इस बेचैन मुरीद के शौक की इंतहा देखो! उसके कदम अब भी बेतहाशा किसी डगर की

तलाश में बढ़े जा रहे थे। तभी उन्हें एक मोड़ मिल गया।

हमारे शौक की ये इंतहा थी,
कदम रखखा कि मंज़िल रास्ता थी।

मगर यह मोड़ शरीफाना समाज से एकदम हटके था। इसकी गलियाँ बेहद काली और अंधेरी थीं। न न ... वैसी वाली अंधेरी मत समझ लेना- रोशनी तो खूब थी यहाँ। जगह-जगह धधकती शम्माओं को आगोश में समेटे झूमर झूल रहे थे। मशालों से शोले छिटक रहे थे। चिरागों की लौ लहरा-बलखा कर जलवे लुटा रही थीं। माशा-अल्लाह! रौनक और गमक भी कुछ कम नहीं थी यहाँ! गुलाब और चमेली के गज़रों की रूमानियत! एक किनारे पर माचिस की डिब्बी जैसी पनवाड़ी की छोटी सी दुकान खड़ी थी। उससे उठती गुलकंद, तंबाकू, सुपारी की भीनी-भीनी महक! हवा में कशों के घूमते छल्ले! शराब के अड्डे पर तो खासी चहल-पहल थी। उसके अंदर लोग जा तो सही सलामत अपने पैरों पर रहे थे, मगर आ रहे थे किसी के कंधे पर लटके हुए।

आज बुल्लेशाह भी तो मदहोश था। तभी तो उसे इतना भी होशो-हवास न रहा कि वह तवायफों की नफ्सपरस्त दुनिया में कदम रख चुका है। जहाँ की हर चीज़ शौकीनी और रंगीनमिज़ाजी की छाप लिए हुए है। इतने में, जैसे उसके होश को किसी ने झंझोड़ा। एक ऊँचे कोठे से एक दर्दीली तरन्नुम उठी। सुरों से बनी सुरा थी वो! रागों में रंगी गुलाबी रागिनी! उसके लफ्ज बेशक सस्ते थे। मगर धुनें ऊँचे दाम वाली हुनरमंदी की गवाह थीं। साथ ही सुनाई दी, मुज़रे की छूम-छनन। घुंघरुओं की रूनन-झुनन! लाजवाब ताल के संग! फन में गुंथा जादू था वह! बुल्लेशाह की ज़िन्दगी के साज़ को छू गया। उसके तारों को थिरका कर उसमें आस की तरंग भर गया।

कहते हैं कि इस नापाक महफिल से उठते स्वरों से बुल्लेशाह को एक रूहानी पैगाम मिला था- 'गौर कर बुल्लेशाह, तेरे मुर्शिद की पसन्द क्या है! जब भी कोई आलाप उठाकर नाचता है, तो इनायत कमल से खिल जाते हैं। तरन्नुम उनमें तबस्सुम खिलाती है। वे नाचने वाले पर बरबस बख्शीशें लुटा बैठते हैं... क्यों न तू भी यही ज़रिया आज़मा कर देख? आज तक तो तूने अल्हड़-फल्हड़ ढंग से काफियाँ गाई हैं। बे-सुर-ताल के नाचा है। पर अब इस तवायफ की शागिर्दी हासिल कर... गाना सीख! नाचना सीख! खुशामदीद! तेरा ख्वाब ज़रूर जमीं पर उतरेगा। इनायत की रहनुमाई तेरा दामन ढूँढ़ेगी।'

पैगाम क्या मिला, बुल्लेशाह के सिकुड़े फेफड़ों से सांसों का झोंका गुज़र गया... हाँ... हाँ... वो अपने गले को अब साज़ बनाएगा। उसकी तारों को रियाज़ से खींच-खींच कर साधेगा। उसमें दिल की हूक भरेगा... और वह हूक अपने इनायत तक पहुँचाएगा। पैरों में घुंघरू बांधकर नाचना सीखेगा! अरे, पैरों ही नहीं, वह तो अंग-अंग को घुंघरू बना डालेगा! ताल-ओ-तर्ज़ पर उनको बजा-बजा कर अपने रूठे साईं को मनाएगा!

बस उसके जुनूनी हौंसलों का तीर कमान से छूट गया। अब उसकी रवानी को कौन रोके! एक नदी की बदहवासी को तुम बेशक बांध लगा कर थाम लो। मगर एक आशिक की हसरतों की सुनामी लहर को भला कौन बांधे? बुल्लेशाह फौरन सुरों और धुनों के सोते की तरफ दौड़ पड़ा। आनन-फानन कोठे की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। जिगर में दीवानगी का तूफाँ लिए! कदमों में बिजली की कौंध लिए! इस रफ्तार

को रौंदने वाला दूर-दूर तक कोई ख्याल, कोई शर्म, कोई हया नहीं थी। इतनी भी नहीं कि वह किसी संगीत के उस्ताद या नृत्य शास्त्री की पाठशाला में नहीं जा रहा; इनायत को रिझाने के लिए किसी दरगाह की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ रहा, बल्कि शहर की सबसे नापाक दुकान की ओर बढ़ रहा है। सबसे बदनाम सीढ़ियों पर डग भर रहा है। ऐसी सीढ़ियाँ जिन पर चढ़ने से पहले आदमी बहुत नीचे गिर चुका होता है!

सच में, यही जुनून की असली सूरत है! आग की लौ का जुनून है, ऊँचा उठकर अपने प्रीतम सूरज में जज़्ब हो जाना। इस जुनून के सदके! वह लौ यह भी नहीं देखती कि उसे ऊँचा उठने की ताकत देने वाला शुद्ध देसी घी है या फिर जानवरों की चर्बी को पिघलाकर बनाया गया कोई घटिया वनस्पति! अगर वह तेल है, तो तिल का है या सरसों का! आज बुल्लेशाह के सीने में भी ऐसे ही जुनून की आग थी। उसे अपने इनायत के पाकीज़ा कदमों को चूमना था। फिर उन तक पहुँचने का ज़रिया चाहे जहन्नुम की सीढ़ियाँ ही क्यों न हों! उसे तो उन पर भी ज़न्नत का नूर बिछा दिख रहा था-

तेरे ख्यालों, तेरे ख्वाबों की ये ठंडी फिज़ा,
हाँफती रूह को पनाह जैसी लगती है।
तेरी उल्फत में ये कैसा मकाम आया है,
हवा कोठे की भी दरगाह जैसी लगती है!

ऊपर पहुँचते ही, बुल्लेशाह ने कांस का बना कीवाड़ खटखटाया। वेश्या खुद ही बेपर्दा बाहर आई। ज़ुल्फ़ों से लेकर पैर के नाखूनों तक- वह हुस्न की मल्लिका थी। कुछ खुदा का करम, कुछ श्रृंगार की कलम- तराशी पूरी तबीयत से गई थी। मगर बुल्लेशाह की निगाहें तो पहले ही किसी के रूहानी हुस्न के कैदखाने में बंद थीं। भला तवायफ के जिस्मानी हुस्न में उस कैद के ताले तोड़ने की ताकत कहाँ थी? बुल्लेशाह तो उस तवायफ में महज़ अपने इनायत तक पहुँचने का इलाही रास्ता तलाश रहा था।

उधर तवायफ बुल्लेशाह को एक नज़र देखते ही कुछ हिचक गई। उसके मन की मथनी फिरकने लगी- यह कैसा अजीबोगरीब ग्राहक है! इसकी निगाहों से न कोई बेगैरत जानवर झांकता है, न ही नज़रों के कटोरों में खरमस्ती की भीख है। पर... नहीं..., नहीं....यह कोई न कोई ख्वाहिश तो ज़रूर लेकर आया है। मगर बड़ी अल्लाही, बड़ी पाकीज़गी भरी! ऐसी नहीं, जैसी एक भौंरे की गुलाब से या कीचड़ के कीड़ों की कमल की नाल से होती है। कुछ-कुछ ऐसी, जैसी एक ठंडी हवा के झोंके की इन फूलों से होती है। अपने पाक दामन में यह झोंका इनसे मकरंद बटोरकर दरगाह तक जाता है और पीर के कदमों में इत्र बनकर बिखर जाता है।

यह कैसी अनदेखी शख्सीयत है! इसमें न मर्दानगी की अकड़ है, न रईसी की तनाई! ...नहीं...नहीं ...कुछ-कुछ ऐंठ तो है, मगर शायद शराफत की! इंसानियत की, खुद्दारी और गैरत की! तवायफ पैनी नज़रों से बुल्लेशाह को कुरेदती जा रही थी। फिर असल सूरत जानने के लिए उसने उसी मनचली अदा का तराज़ू झुलाया, जिससे वह आज तक अपने दूसरे ग्राहकों को तोलती आई थी। घुंघरू खनकाए, कंगन भरी कलाइयाँ घुमाईं और नैन चलाकर इशारा किया। मगर यह क्या? आज तक उसकी इन छम्मक-छल्लो वाली अदाओं पर थैलियों के मुँह खुल जाते थे। सिक्कों या ज़ेवहरातों की खनक पलट कर जवाब देती थी। पर आज? खनक तो आज भी हुई। पर कैसी? दर्द की गहराइयों से उठती हुई, बुल्लेशाह की एक ठिनकती हुई आवाज़ आई- 'आपा (बड़ी बहन)!'

यह एक कामिल मुर्शिद के सच्चे मुरीद की खनक थी! दुनिया के बाज़ार में एक साधक की दौलत की खनक थी! वासनाओं के देश में गूंजती एक पाक आज़ान थी! एक रूहानी आशिक के द्वारा जिस्मानी हुस्न की उड़ाई गई ज़ोरदार खिल्ली थी!

तवायफ ने यह खनक सुनी, तो सकपका कर रह गई। कानों सुनी पर यकीन ही नहीं हुआ। आज पहली मरतबा उसे किसी ने इतने इज़्ज़तदार मुकाम पर बैठाया था। मानो कोठे के कंगूरे को मंदिर की घंटी कह दिया था। चौपाल पर जलती धूनी, जिस पर चलते-फिरते लोग हाथ सेक लेते थे और कुछ मनचले तो बीड़ी भी सुलगा लेते थे- उसे मज़ार पर जलता चिराग कह दिया था। यह सुनते ही

...शेष पृष्ठ 35 पर

श्वांस-श्वांस सुमिरन करो! (भाग-2)

वाह! क्या समाँ है! जनवरी की कड़ाके की ठंड और इस ठंड में गर्म कपड़ों से लैस भक्त-प्रेमी जनों की यह भाव भीनी उपस्थिति! मंच सजा है और लो फिर ज़ारी हुई सत्संग प्रवचनों की अमृतमयी शृंखला (जिसे हमने पिछले माह स्थगित किया था)...

प्रभ कै सिमरनि काल परहरै...

यह सुन्दर शबद गान और इस पर उत्कृष्ट व्याख्या! स्वामी जी गूढ़ तथ्यों को उजागर करते जा रहे थे- 'सज्जनों! गुरु साहिबान कहते हैं कि प्रभु-नाम का सुमिरन पहरेदार है, जो काल तक को जीवन की दहलीज़ से लौटा देता है। इस (आदि-अव्यक्त) नाम-सुमिरन में इतनी शक्ति है कि इसके प्रहार से काल तक को पछाड़ा जा सकता है। जैसे काली और घनघोर रात्रि कभी सूर्य के आगमन पर ठहर नहीं सकती, इसी प्रकार मौत का सौदागर काल भी वहाँ चौकड़ी नहीं लगा सकता, जहाँ प्रभु-नाम का सुमिरन होता है। जहाँ सुमिरन की मीठी रागनियाँ बजती हैं, वहाँ काल का मातमी विलाप घुसपैठ करने की हिम्मत नहीं करता।'

इतना कहकर स्वामी जी ने सवाल उछाला- 'प्रेमीजनों, क्या आपने किसी सच्चे भक्त या संत के इतिहास में कभी यह पढ़ा है कि वे अपने जीवन में डर के मारे थरथर कांपे हों? काल तक से भी भयभीत हुए हों?'

संगत ने बड़े विश्वास के साथ 'न' में गर्दन हिलाई।

स्वामी जी- और हम? हमारी क्या हालत है? ज़रा-ज़रा सी बातों से हमारे प्राण सूख जाते हैं। क्यों, सही कह रहा हूँ न? सोचिए, फिर भक्तों ने ऐसा कौन सा रक्षा-कवच पाया था जो वे काल के आगे भी सीना तान कर खड़े रहे?

संगत के चेहरों पर स्फुट जिज्ञासा पसर गई। मानो पूछ रहे हों- 'कौन सा रक्षा-कवच? बताइए न स्वामी जी।'

स्वामी जी (समाधान देते हुए)- आपको उत्तरकाण्ड का एक सुन्दर प्रसंग सुनाता हूँ। इस प्रसंग के अंतर्गत पक्षीराज गरुड़ ने काकभुशुण्डि जी से भी यही प्रश्न किया था। बात उस समय की है, जब गरुड़ जी काल के सताए और संशय की कंटीली झाड़ियों से आहत होकर काकभुशुण्डि जी के पास पहुँचे। इधर काकभुशुण्डि जी को बेहद मस्तमौला और आनन्दमग्न पाया। हैरान हुए और पूछ बैठे- **तुम्हहिं न व्यापत काल, अति कराल कारन कवन** अर्थात् हे काकभुशुण्डि जी, आपकी आनंदमयी अवस्था देखकर ऐसा लगता है कि आपको कराल-विकराल काल तक का भी भय नहीं व्यापता! काल का तिनका भर भी डर आपके मन में नहीं है! **ग्यान प्रभाव कि जोग बल**- मुझे सच-सच बताइए कि क्या यह किसी विशेष ज्ञान का प्रभाव है या कोई योग-बल आदि है? गरुड़ जी की जिज्ञासा सुनकर काकभुशुण्डि जी मुस्कुराये और वही वाक्य, जो कभी भगवान श्री राम ने उन्हें कहे थे, फिर से दोहराए-

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही,
सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥
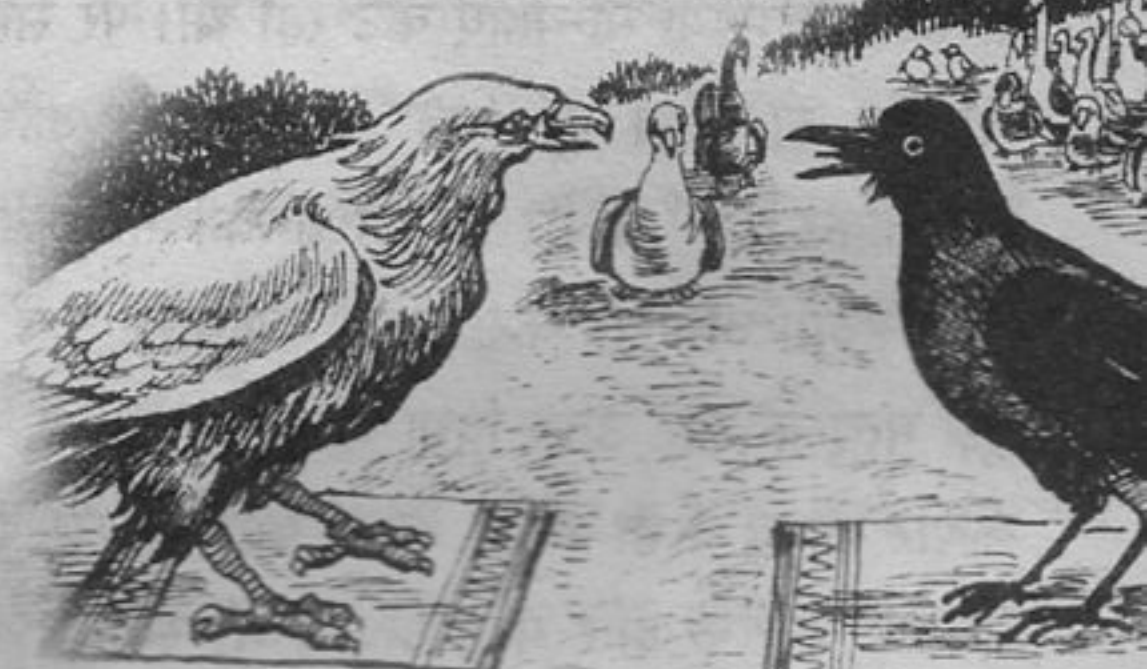
हे पक्षीराज गरुड़, सीधा सा गणित है। जो निरन्तर प्रभु-नाम का सुमिरन करता है, वह काल के भय से सदा अभय रहता है।

मेरे भाई-बहनों! आपने अखण्ड ज्ञान के गुरु-कृपा स्तम्भ के अंतर्गत भी पढ़ा होगा कि जब किसी प्रेमी पर काल की काली परछाई मँडराती है, तो गुरु महाराज जी उसे हमेशा सुमिरन करने का संकेत देते हैं। क्यों? क्योंकि नाम-सुमिरन ही काल के विरुद्ध एकमात्र अभेद्य रक्षाकवच है। इसी बात को और उजला करने हेतु मैं आपको संत कबीर जी के जीवन का एक वाकया सुनाता हूँ। एक बार काशी नरेश के कानों में कबीर जी के धर्म और बंदगी सम्बन्धी तर्कसंगत व धारदार व्याख्यानों की भनक पड़ गई। सुनते ही, वह झेंप गया। कारण कि इन व्याख्यानों से उसकी मिथ्या मान्यताएँ कट रही थीं। पर सही अर्थ को समझना तो बहुत दूर, वह आग बबूला और हो उठा। चिल्लाकर उसने कबीर जी को धमकी भी दे डाली- 'बस बहुत हुआ! अब बंद कर अपनी बकवास, नहीं तो तत्काल तुझे मृत्यु के घाट उतार दिया जायेगा!' पता है, यह सुनकर कबीर जी ने कैसी-कैसी अमर-वाणियाँ रच दीं? वह भी एकदम बेखौफ और मस्त अंदाज में! स्वामी जी ने इशारा किया। गायक स्वामी जी ने उन वाणियों को सुरों के धागों में पिरोना शुरू कर दिया-

माली आवत देख के कलियन करी पुकार।
फूलीं फूलीं चुन लिया, काल हमारि बार॥
....ओ...ओऽऽ
आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ चले, एक बंधे जंज़ीर॥
....ओ...ओऽऽ

क्या सुन्दर शब्द थे! क्या सुन्दर राग और ताल! प्रेमियों की आँखें किसी अनूठे नशे में मुंदती जा रही थीं। धुन और ताल के साथ कइयों के सिर झूम रहे थे। कई पाँव से ज़मीन थपथपाकर तबले की ताल से इकमिक हो चुके थे। स्वामी जी ने व्याख्या की- भगवद्प्रेमियों, कबीर जी ने डंके की चोट पर कहा- 'राजन्, मृत्यु एक अटल सत्य है। फूल खिलकर मुरझाता ही है। राजा हो या रंक, जो जन्म लेकर इस संसार में आया है, उसे एक दिन जाना ही है। फिर इस अवश्यंभावी घटना से क्या डरना?' कबीर जी के इस तर्क को सुनकर काशी नरेश बड़ी चतुराई से बोला- 'सच में, मृत्यु तो सबकी अटल है। मगर यदि कोई अपनी धृष्टता के कारण उसे पहले ही आमंत्रण दे दे तो? तो क्या उसे मूर्ख नहीं कहेंगे? कबीर, अनर्गल बातों का प्रचार करके तू भी वही मूर्खता कर रहा है। क्यों मेरे हाथों बेमौत मरने का हठ ठाने बैठा है?' कबीर जी के मुख से एक और तर्क का तीर छूटा-

खुला खेल संसार का, बांधि सके ना कोय।
जाको राखे सांईया, मारि सके ना कोय॥

नरेश, तू मुझे मारेगा!?! अरे, जिस पर साईं की छतरी है, उसका गरजते बादल क्या बिगाड़ सकते हैं?

बस! इतना सुनना था, मानो नरेश की आँखों में मिर्ची डल गई। क्रोध के मारे लाल भट्ठी की तरह तपने लगीं। मुट्ठियाँ भिंच गईं। दाँत पीसते हुए उसने ज़ारी कर दिया फरमान- 'जाओ, उठाकर फेंक दो इस दुष्ट को मस्त हाथी के पांवों तले! मौत दिखेगी तो अपने आप अक्ल ठिकाने आ जायेगी!' लेकिन कबीर भी तो बस कबीर ही थे! कहाँ डरने वाले थे? फाकामस्त होकर ठहाका लगा उठे। कबीर जी का यह बिंदास रवैय्या देखा, तो बेचारे राजा का क्रोध और सातवें आसमान को छू गया। खीजता हुआ बोला- 'हद हो गई हद! अरे ओ पागल आदमी! क्या तुझे ज़रा भी काल का भय नहीं, जो अब भी ऐसे घें-घें करके हँस रहा है? मैं कहता हूँ, अब भी समय है। आ, झुक जा मेरे कदमों में! मांफी मांगकर एक बार सलाम कर ले! निःसन्देह मैं तुझे जीवन दान दे दूँगा।'

लेकिन वाह! सदके कबीर जी की फ़कीरी पे। क्या नोकीला अस्त्र छोड़ा! पता है क्या बोले?-

काल पकड़ चेला किया, भय का कतरा कान।
मैं सतनाम सुमिरन करूँ, किसको करूँ सलाम॥

हाहा! क्या कहा, मैं तुझे सलाम करूँ? ओ बुद्धु राजे, तू किसे डरा रहा है? मैं तो भय का कान ही कतर चुका हूँ! समझो साक्षात् काल को पकड़ कर चेला बना चुका हूँ!

कबीर जी यह जौहर कैसे दिखा पाए?- **मैं सतनाम सुमिरन करूँ**- सतनाम के सुमिरन द्वारा!

कबीरा हमरे नाम बल, सात दीप नौ खण्ड।
जम डरपै सब भय करे, गाज रहा ब्रह्मण्ड॥

कबीर निश्शंक होकर कहते हैं कि मेरे पास आदिनाम की ताकत है। ऐसी ताकत, जिसके आगे यम को पसीने छूट जाते हैं। सात द्वीपों और नौ खण्डों में जिसका कोई तोड़ नहीं। सकल ब्रह्माण्ड में जिसका डंका बज रहा है। यह नाम कालजयी है! मृत्युंजयी है!

बताइए, भगवद् प्रेमियों, क्या शब्दों में इससे ज़्यादा नाम-सुमिरन की महिमा गाई जा सकती है? इसलिए दिन-रात सुमिरन करो! एक-एक श्वांस में सुमिरन का रंग भरो!

यह महिमागान सुनकर सभी गद्गद हो गये। श्वांसो में समाई नाम-सुमिरन की सुगंध बटोरने लगे। लेकिन तभी एक युवा ज्ञानी-भाई, चेहरे पर दुविधा-भाव लिए, खड़ा हुआ। बोला- 'स्वामी जी, मृत्यु रूपी काल तो जब आएगा, तब आएगा। लेकिन इस पड़ाव पर तो विषय-वासनाएँ ही काल बनकर मुझे निरंतर डस रही हैं। इतने बुरे-बुरे विचार मन में उठते हैं कि कई बार तो ख़ुद से ही घृणा होने लगती है। आत्मा धिक्कारती है कि कहीं चुल्लू भर पानी में जाकर डूब जाऊँ। स्वामी जी, यह बताएँ कि क्या नाम-सुमिरन से मैं इन दुर्विचारों से मुक्त हो पाऊँगा?'

स्वामी जी (स्नेह से) - प्रिय अनुज! क्या आपने खिचड़ी बनाते समय पतीली में उबलते दाल चावलों को देखा है? कितने अशान्त और कूद-फांद करते नज़र आते हैं! कभी सोचा है क्यों? क्योंकि दाल-चावल के दाने अभी कच्चे हैं। ज़रा लगने दो निरन्तर अग्नि की आंच। जैसे-जैसे ताप लगेगा, पकते जायेंगे। उनका उछलना-कूदना भी मंद पड़ता जायेगा। एक समय आता है जब पतीली के अंदर की दुनिया शांत हो जाती है। ठहरी, बिल्कुल सागर की तरह! बस, आपको भी बिल्कुल इसी तरह नाम-सुमिरन की आंच में अपने मन को निरंतर सेकने की आवश्यकता है। फिर देखना, धीरे-धीरे यह मन पकता जाएगा। उसकी भागम-भाग, विषयों की ओर कूद-फांद बिल्कुल शांत हो जायेगी। क्यों समझे अनुज? चलो, इस बात को एक और उदाहरण से समझो।

नाम-सुमिरन में ऐसी ताकत है, जिसके आगे यमराज और विकारों के राक्षसों को पसीने छूट जाते हैं।

आपने मेहंदी के हरे-हरे पत्ते देखे होंगे। शायद आप यह भी जानते होंगे कि इन पत्तों में लाल-सुर्ख लाली भी छुपी होती है। लेकिन क्या ब्लेड़ से काटने पर यह लाली दिखाई देती है? नहीं न! फिर क्या करना पड़ता है? जी हाँ! सिल्ली पर रगड़ना पड़ता है, अच्छी तरह! अब रगड़ी पत्तियों का लेप जब आप हाथों पर धारण करते हैं, तो लाली बाहर छलक आती है... अच्छा, एक और उदाहरण सुनो। दही से माखन निकलता है। यह आप अच्छी तरह से जानते होंगे। लेकिन क्या सीधे-सीधे ऊँगली डालकर आप दही से माखन निकाल सकते हैं? मत करना कभी ऐसा, नहीं तो लोग

हँसेंगे... जी हाँ, सही सोच रहे हैं आप! मथना पड़ेगा मथनी से। अब ज्यों-ज्यों मथनी दही में फिरकेगी, वैसे-वैसे माखन निकलना आरम्भ हो जायेगा। बस, ठीक यही युक्ति आज के बाद आपने अपनानी है। खूब रगड़ो सुमिरन की सिला पर इस मन को! शुभ विचारों का रंग खुद-ब-खुद बाहर छिटक कर आएगा। सुमिरन की ऐसी मथनी चलाओ अपने अंदर कि सद्‌गुण स्वत: ही बाहर निकलने लगें। एक बार करके तो देखें! फिर आप भी संतों की तरह यही कह उठेंगे-

सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय।।

माने नाम के समान कोई दूसरा रसायन ही नहीं है। जब हम घट को इससे सींचते हैं, तो सारी काया ही कंचन हो जाती है। इसी मुद्दे पर मुझे एक घटना याद आई। एक बार संत चरणदास जी, संत लिबास में लिपटे और सुमिरन से सुरत जोड़े हुए कहीं जा रहे थे। एक आवारा लड़के की नज़र उन पर पड़ी। उसने उनसे पूछा- 'बाबा जी, संसार में गज़ब का आकर्षण है, सम्मोहन है! ज्यादा नहीं, तो कहीं न कहीं तो आपका मन भी फिसलता ही होगा? क्यों? सच-सच बता दो- यहाँ कोई नहीं है।' चरणदास जी लड़के के दोस्ताना अंदाज़ पर मुस्कुरा दिए, फिर बोले- 'फिसलेगा तो तब न, जब मन अपनी चाल और अपनी डगर चलेगा! नाम-सुमिरन ने मेरे मन को ऐसी मार मारी है कि क्या बताऊँ? अब न तो उसके पास चलने का बल रहा है और न संसारी-डगरों की सुधि'-

चरणदास मन जप करे, सब बल जाये हार
देह जगत विस्मृत जब, रग रग बोले राम
चरणदास यों कहत हैं पहुँचै हरि के धाम

पर विषय-वासनाओं की भीड़ में भटकने वाले उस लड़के को इतनी जल्दी विश्वास कहाँ होना था? लिहाज़ा वह फिर बोला- 'बाबा जी, फिर भीऽऽऽ! संसार के सौ नहीं, तो एक-आधा विचार तो आता ही होगा न? ऐसा कैसे हो सकता है कि आप संसार की सारी गिनती ही भूल जायें?' चरणदास जी इस बार हँस दिए और बोले- 'नहीं भइया, गिनती के सारे अंक थोड़े भूला हूँ मैं! एक अंक तो मुझे अच्छी तरह से याद है। वह अंक है- शून्य! आदिनाम के सुमिरन द्वारा मैं मन को शून्य अंक पर टिका देता हूँ यानी विचाररहित हो जाता हूँ। इसलिए विषय-विकारों से कभी परेशान नहीं होता-

नामहिं जपे शून्य मन धरै, पाँचहु इन्द्रिय वश में करै।
ब्रह्म अग्नि में होमै काया, ता कहँ विष्णु पखारत पाँया।।

मतलब कि नाम-जप से मेरा मन ऐसे शून्य में ठहर चुका है कि पाँचों इन्द्रियाँ मेरे वश में हो गई हैं। कोई विषयी विचार मुझे नहीं सताता। ब्रह्माग्नि में सारी कलुषता, सारा अहं स्वाहा हो गया है। अब तो अवस्था यह है कि साक्षात् भगवान विष्णु मेरे पाँव पखारते फिरते हैं।'

देखी आपने संतों की पैठ और उसकी ऊँचाई! पर इस ऊँचाई की पहली पौड़ी क्या है? वही- **नामहिं जपे**- नाम-सुमिरन! महाराष्ट्र के पैठणक ग्राम में रहने वाले संत एकनाथ जी भी यही कहते हैं- 'गुरु जनार्दन जी ने जो मुझे नाम दिया है, उसके सुमिरन ने मुझे इन्द्रिय-विषय और काम-प्रवृति को भुला ही दिया है-

एका नार्दनीं घेता हरिचें नाम।
निमालीं इन्द्रियें विषय विसरलीं काम।।'

स्वामी जी के उत्तर ने उस युवा भाई को तो नख से सिर तक संतुष्ट कर दिया। लेकिन, अब एक बहन जी को दुविधा पैदा हो गई। वे बोलीं- 'स्वामी जी, माना कि कबीर जी ने काल को अपना चेला बना लिया था; काकभुशुण्डि जी भी काल से नहीं डरे; चरणदास जी ने मन-इंद्रियों को अपने वश में कर लिया था; एकनाथ जी काम-वृत्ति को ही भूल गए थे-- परन्तु ये सब, जिनके नाम आपने लिए, तो महान भक्त थे। ईश्वर के प्रेमी थे। प्रभु से अगाध प्रेम करते थे, इसी कारण निरंतर नाम का सुमिरन कर पाए। पर हमारा तो प्रभु से इतना प्रेम ही नहीं है। फिर हम उनकी तरह निरंतर सुमिरन कैसे कर सकते हैं?'

स्वामी जी- बहन जी, क्षमा कीजिए, पर आपको किसने यह भ्रम डाल दिया कि भक्तों का प्रभु से प्रेम था, इसीलिए वे निरंतर नाम-सुमिरन करते थे। जबकि सच्चाई तो यह है कि निरंतर नाम सुमिरन के कारण ही उनका प्रभु से प्रेम बना

पाया....बहुत से साधकों की यह शिकायत रहती है कि उनके मन में गुरु या प्रभु के लिए प्रेम नहीं है- इसलिए वे क्या करें? पर याद रखें, सुमिरन की जल-बिंदुओं से ही प्रेम-बेल फलती-फूलती है। लगता है आप नहीं समझीं? चलिए, एक उदाहरण श्रवण कीजिए। मान लीजिए, पिछले कई सालों से आपके अत्यन्त प्रिय, छोटे भाई विदेश में रहते हैं। हालांकि इस वक्त, व्यस्त होने के कारण, आपके मन में भाई का कोई ख्याल ही नहीं। लेकिन अचानक किसी ने आपसे पूछा कि आपके भाई राजू का क्या हाल चाल है। अरे ये क्या! भाई का नाम सुनते ही आपके मन में अपने प्रिय भाई को लेकर स्नेह उमड़ने लगा। मन में चाह जगी कि जैसे आप उड़कर अभी उसके पास चली जाएँ। शायद प्रेम में थोड़ी आँखें भी नम हो आएँ। आखिर ये प्रेम के पुष्प आपके हृदय में क्यों खिले? जानती हैं आप? जी हाँ! भाई के नाम के स्मरण मात्र से ही ये प्रेमांकुर फूट पड़े। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा-

सुमिरअ नाम रूप बिनु देखें।
आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

ईश्वर भले ही आपके मन से कुछ समय के लिए दूर क्यों न हो। बस आप नाम जपें, निरंतर सुमिरन करें। निःसन्देह प्रभु-प्रेम की कलियाँ युवा हो उठेंगी।

चलिए! प्रयोगात्मक ढंग से भी इस बात को समझकर देखिए। कृपया यह बताएँ कि अभी आपको मुख में विशेष प्रकार का कोई स्वाद महसूस हो रहा है? नहीं न! अच्छा, एक बात और बताएँ, आपने अभी-अभी या कल-परसों, जो खट्टी-खट्टी-चटपटी सी इमली होती है, जिससे मुँह में खट्टा-मीठा सा पानी भर जाता है, क्या खाई है? हालांकि आपने अभी हाल ही में इमली नहीं खाई हो, लेकिन क्या इमली की थोड़ी सी चर्चा करने पर आपके मुख में पानी नहीं भर आया? ऐसा हुआ न?

बहन जी अंदर से ही घूंट भरते हुए बोलीं, 'हाँ भइया जी, वाकई में मुँह में खट्टे-मीठे से स्वाद का एहसास सा पनप उठा।'

स्वामी जी- तो फिर.....! जब 'इमली' शब्द मात्र ने ही आपके मुँह में रस भर दिया, तो क्या प्रभु का नाम आपके हृदय में प्रेमरस नहीं भरेगा? इसलिए आप बेनागा नाम-सुमिरन से अपने मन की सिंचाई करते चलो। देखना, एक दिन प्रेम फसल को लहलहाता हुआ पाओगे! सच कहता हूँ, (गुरु-महाराज जी द्वारा दिए गए सत्) नाम का सुमिरन करके तो देखो, आप पाओगे कि आपके रूखे-सूखे-बंजर से दिल की ओर प्रेम-फुहारों ने अपना रुख कर लिया है। गुरुदेव के प्रति मन प्रेम से सराबोर रहेगा।

'भइया, आप बिल्कुल सही कह रहे हैं। पर बस अब मुझे इसे जीवन में उतारना होगा', इतना कहकर बहन जी बैठ गईं।

(अगले अंक में- सुमिरन से कैसे पाप-कर्म, अशुभ संस्कार नष्ट होते हैं? कैसे परमानंद प्रकट होता है, लक्ष्य की प्राप्ति होती है और असंभव भी संभव हो जाता है?)

क्रमशः

पृष्ठ 30 का शेष

गुरु मुरीद- बुल्लेशाह

तवायफ के कमान से खिंचे चितवन की मानो डोर टूट गई। पलकें झुक गईं। अपने लहराते पल्लू को समेटने और उसमें लिपट जाने की ज़ोरदार तलब अंदर ज़ोर मारने लगी। कुछ सोया हुआ जागने के कगार पर आ गया। ज़ेहन की खाईयों में दबे संस्कार सिर उठाने को बेकरार हो उठे।

मगर बाहरी ज़िल्द भी कुछ कम सख्त नहीं थी। भरी जवानी में धोखों के इतने थपेड़े खाए थे कि सख्ती का आना लाज़िमी था। पाक़ से पाक़ रिश्तों को उसने बेईमानी की वेदी पर बलि होते देखा था। इसलिए उसने अपनी तवायफी हस्ती में फिर से फूँक भरी और लहराकर पूछ बैठी-

(तवायफ और बुल्लेशाह के बीच जो शायराना और खूब गहरी गुफ्तगू हुई, उसे आपकी नज़र करेंगे- अगले अंक में।)

क्रमशः

सबसे ऊँची प्रेम सगाई

अद्‌भुत योग

एक दिन भोली-न्यानी गोपी विशाखा, कन्हैय्या की धुन में पगी, कहीं जा रही थी। एक पेड़ तले उसे एक योगी-महात्मा आलथी-पालथी मारे बैठे दिखे। विशाखा ने नमन किया और पूछा- 'बाबा, आप क्या कर रहे हैं?'

योगी बाबा- देखती नहीं, मैं जोग (योग) साध रहा हूँ!

विशाखा- जोग! पर क्यों?

योगी बाबा- इतना भी न जानत है! अरी, जोग से संयम की शक्ति मिलती है। मन-चित्त अपने वश में आता है।

विशाखा- मन-चित्त अपने वश में! ठीक है, नमन बाबा।

विशाखा तेज़ कदमों से एक कुंज की ओर दौड़ पड़ी। एक कुश की ढेरी पर चौकड़ी मारकर बैठ गई। किसी ने उससे नहीं पूछा- तू क्या कर रही है? पर फिर भी वह हवाओं को डांटते हुए बोली- 'देखती नहीं, जोग साध रही हूँ!'

पर क्यों?

विशाखा- वो कन्हैय्या जादुई-बंसी बजाकर मेरा मन-चित्त, सब कुछ हर के ले गया है। अब घर का काम-धंधा, चूल्हा-चौका कैसे करूँ? जब देखो, याद आती है, सिसकियाँ फूटती हैं, कलेजा मुँह को आता है। किसी की इतनी ठकुराई भी ठीक नहीं, चाहे वो भगवान ही क्यों न हो! इसलिए सोचती हूँ, कन्हैय्या से अपना मन-चित्त वापिस लेकर अपने वश में कर लूँ। इसीलिए मैं जोग साध रही हूँ।

उधर इस दिव्य दृश्य को संत श्री रूपगोस्वामी जी अपनी दिव्य दृष्टि से निहार रहे थे। गद्‌गद वाणी में कह उठे-

प्रत्याहृत्य मुनि गणं विषयेता यस्मिन् मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते।।

अहो! सुन्दर-अत्यन्त सुन्दर! बड़े-बड़े मुनिगण योग आदि साधनों से मन को खींचकर जिनमें लगाना चाहते हैं, उन्हीं से मन को हटाकर यह गोपी विषयों में लाना चाहती है!! ऊँचे-ऊँचे महात्मा हाथ बांधे, जिन्हें चित्त सौंपने को आतुर हैं, उन्हीं से मनुहार करके, यह गोपी अपना चित्त वापिस मांग रही है!! यह प्रेम का कैसा अटूट जोड़ है! कैसी अद्‌भुत प्रीत-सगाई है!

खैर, अब देखना तो यह है, क्या योग का ताप विशाखा का प्रेमांकुर सुखा पाया? योग की दवाई प्रीति का बुखार उतार पाई? क्या गोपी अपनी जागीरें प्रभु से वापिस ले पाई? अजी बिल्कुल! बरसाने की हट्टी-कट्टी ग्वालिन जो ठहरी! बचपन से दूध-दही खाई थी। पीछे कैसे हटती? तो लो जी, गोपी अपना मन-चित्त वापिस लेकर ही मानी।

पर यह क्या! अब मन मन कहाँ रहा था? कृष्णमय होकर कृष्ण ही हो गया था। चित्त उसका चित्त कहाँ रह पाया था? प्रभुमय होकर प्रभु रूप ही हो गया था। कृष्ण ही मन बन गए थे। कृष्ण ही चित्त और कृष्ण ही प्राण हो गए थे। जिनकी याद को बाहर निकालने की कोशिश थी, वे ही नए-नए, अनेक-अनेक रूपों में साक्षात् लौट आए थे। सच में, कितने अलबेले हैं, प्रेम नगर के ये खेल! ◻◻

मेरा अनुभव (भाग-2)

(आपने पिछले अंक में पढ़ा कि संस्थान के तीन स्वामी जी प्रचार-कार्य हेतु प्रतापगढ़ की ओर रवाना हुए। सौभाग्यवश, दिल्ली छोड़ने से पहले उन्हें गुरु महाराज जी के चरण-स्पर्श का मौका मिला। महाराज जी ने आज्ञा दी- 'इस सफर के दौरान किसी भी स्थान को छोड़ने से पहले दस मिनट की साधना अवश्य करना।' फिर गंतव्य यानी सेत्तापुर गांव पहुँचकर उन्होंने तीन दिन का सत्संग कार्यक्रम किया। इतनी संगत पहुँची कि बैठने का स्थान कम पड़ गया। इसलिए रामराज जी ने, जिन्होंने कार्यक्रम आयोजित किया था, अपने खेत में ही संगत के लिए दरियाँ बिछवा दीं। अड़ोसी-पड़ोसियों ने चेताया कि इससे उनकी आलू की फसल बरबाद हो सकती है। पर रामराज जी ने इस बात पर कान नहीं दिए। अगला कार्यक्रम पास ही के गाँव में आयोजित किया गया। वहाँ भी काफी लोग सत्संग-संदेश से प्रभावित हुए। परन्तु कुछ लोगों ने सत्संग विचारों का मनमाने ढंग से अर्थ निकाल लिया और विरोधी पक्ष में खड़े हो गए। पर इन चंद विरोधियों को छोड़कर अधिकतर बाकी सभी गांववालों ने ज्ञान-दीक्षा प्राप्त की। वे दिव्य-अनुभवों को पाकर इतने हर्षित हुए कि उन्होंने स्वामियों को खूब मान-सम्मान दिया। इस मान-सम्मान और प्रशंसा के चक्कर में स्वामी-प्रचारक ऐसे उलझे कि उस गाँव को छोड़ने से पहले दस मिनट की साधना करना भूल गए। अब आगे...)

जब गाँववासी हमें विदा कर वापिस घर लौटे, तो वहाँ एक अनहोनी घट चुकी थी। दरअसल, जिन सज्जन ने अपने घर सत्संग रखवाया था, उनकी विवाहित बेटी भी सत्संग सुनने उनके घर पहुँची थी। उसकी डेढ़-एक साल की छोटी-सी बच्ची थी। जब ये सब परिवार वाले हमें विदा करने के लिए गाँव की सीमा तक गए, तो इस बच्ची को घर में ही सोता हुआ छोड़ गए। लेकिन अब जब ये वापिस लौटे, तो उस बच्ची को दयनीय अवस्था में पाया। उसका सारा शरीर नीला पड़ चुका था। वह लम्बे-लम्बे सांस ले रही थी। उसके मुंह से झाग निकल रहा था। इससे पहले कि ये लोग कुछ कर पाते, उस बच्ची की आँखें पलट गईं। हाथ-पैर ठण्डे पड़ गए और एक-दो लम्बे सांस लेकर श्वांस क्रिया रुक गई। देखते-ही-देखते बच्ची ने प्राण त्याग दिए! अब तो जिस घर में कुछ क्षण पहले खुशियाँ मनाई जा रही थीं, वहाँ मातम छा गया। भजन-कीर्तन की जगह रोना-चिल्लाना शुरू हो गया।

बातों के तो पंख होते ही हैं। इसलिए एक पल में ही यह बात पूरे गाँव में फैल गई। जब विरोधियों को इस घटना का पता चला, उनका कलेजा तो हाथ भर का हो गया। वे तो मानो किसी ऐसे मौके की फिराक में ही बैठे थे। सब के सब तुरन्त घटना स्थल पर पहुँचे। वहाँ पूरी घटना का ब्यौरा लिया। फिर एकदम से निष्कर्ष निकालते हुए बोले- 'देखा! क्या कर गए तुम्हारे वो संत? हम तो पहले से ही जानते थे कि वे कोई संत-स्वामी नहीं हैं। अरे धोखेबाज, पाखण्डी थे सब-के-सब! हो न हो ज़रूर तांत्रिक होंगे। तंत्र-मंत्र पढ़कर तुम्हारी बच्ची की आत्मा निकाल कर ले गए। ये तांत्रिक लोग ऐसा ही करते हैं। आत्माओं को अपने वश में करके, उनसे अपने काम करवाते हैं। ज़रूर तुम्हारी छोटी-सी बच्ची की आत्मा को भी वे ही निकाल कर ले गए हैं... पर अब हम छोड़ेंगे नहीं उन लोगों को! ऐसा मज़ा चखाएँगे कि उनकी सात पुश्तें तक तंत्र-मंत्र भूल जाएँगी...' और भी न जाने क्या-क्या

अपशब्द कहे। (बाद में कुछ ज्ञानी-भाइयों ने हमें यह सब बताया था।) फिर इन लोगों ने हाथों में लट्ठ लिए और चल पड़े हमारी ओर।

इधर हम सात लोग थे। हम तीन स्वामी और चार अन्य सेवादार गुरु-भाई। प्रभु-नाम का भजन करते हुए हम धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। इस कारण गाँव से ज़्यादा दूर नहीं जा पाए थे। इसीलिए ये लोग जल्द ही हमारे तक पहुँच गए। हमारा रास्ता रोक कर खड़े हो गए। फिर बोले- 'तुमने क्या सोचा था इतनी आसानी से भाग जाओगे?' हमने उनके इस दुर्व्यवहार का कारण पूछा। उन्होंने ज्यों की त्यों सारी घटना कह डाली। घटना सुनकर तो एक बार मेरी सांस बीच में ही अटक गई। लेकिन फिर मैंने खुद को संभाला और उनसे कहा- 'देखिए, आप समझने की कोशिश करें। भला हम क्यों उस छोटी-सी, मासूम बच्ची की जान लेंगे? यकीन मानिए, हम कोई तांत्रिक-वांत्रिक नहीं हैं! हम आपके गांव में चार दिन रुके। आप ही बताइए, क्या कभी हमने किसी तंत्र-मंत्र की बात की? जिन लोगों ने ज्ञान-दीक्षा ली है, उनसे पूछिए कि क्या हमने दीक्षा के समय भी उन्हें कोई मंत्र दिया। कोई तंत्र-विद्या सिखाई? नहीं! हम तो बस शास्त्र-ग्रन्थों पर आधारित सत्संग करते हैं और गुरु महाराज जी की कृपा से उसी महान ज्ञान का प्रचार-प्रसार करते हैं, जो समय-समय पर सभी महापुरुषों ने दिया। इसलिए इस दुर्घटना में हमारा कोई हाथ नहीं है।'

पर वे लोग कहाँ कुछ सुनने-समझने वाले थे? उन पर तो बस एक ही भूत सवार था- हमारी खूब पिटाई करने का! उनके हाथ के डंडे मानो हम पर बरसने को आतुर हो रहे थे। अब मैंने मन-ही-मन गुरु महाराज जी को याद किया और पूछा- 'हे प्रभु, हमसे ऐसी कौन-सी भूल हो गई जो आज हम इस परिस्थिति में फंस गए?' तुरन्त मन में महाराज जी की आवाज़ गूँजी- 'तुमने गाँव से चलने से पहले 10 मिनट की साधना नहीं की न?' मैंने झट दोनों स्वामियों और चारों गुरु-भाइयों से कहा- 'जल्दी से 10 मिनट की साधना करो...हमसे गुरु-आज्ञा की उल्लंघना हो गई है।' इसके बाद हम सारे, जहाँ-जहाँ खड़े थे, वहीं आँखें बंद कर सुमिरन से जुड़ गए। देखिए महाराज जी की कृपा! इस दौरान विरोधी हमें छू भी नहीं पाए। हाँ, बस बड़बड़ाते से रहे- 'देखो, फिर कोई तंत्र-मंत्र कर रहे हैं! पर हम पर नहीं चलने वाला इनका कोई टोना-टोटका...'

इधर सुमिरन से जुड़ने के बाद अंतरात्मा की गहनतम गहराइयों से प्रार्थना निकली- 'महाराज जी, हमें क्षमा कर दो। हम आपकी आज्ञा की गहराई को समझ नहीं सके। यदि हमने साधना की होती, तो आपकी कृपा से वह अनहोनी टल गई होती और हम इस मुसीबत में न फंसे होते। पर अब आपका ही आसरा है। आप ही हमें इस परिस्थिति से बचा सकते हो... गुरुदेव, मैं यह इसलिए नहीं कह रहा कि मुझे पिटाई खाने से डर लग रहा है। बात केवल इतनी ही होती, तो मैं इसे अपनी भूल का प्रायश्चित या दंड समझकर खुशी-खुशी सह लेता। मान लेता कि मेरे कर्म-संस्कार कट रहे हैं। पर सच कहता हूँ, फिक्र तो मुझे इस बात की है कि ये लोग समाज में जाकर क्या कहेंगे। ये यह नहीं कहने वाले कि हम फलां स्वामी को पीटकर आए, फलां स्वामी को मार-मार कर गाँव से खदेड़ा, क्योंकि हमें तो कोई जानता ही नहीं। ये सब यही कहेंगे कि हमने दिव्य ज्योति जाग्रति संस्थान के प्रचारक स्वामियों की डंडे से पिटाई की। आशुतोष महाराज के शिष्यों को मार-मार कर बेइज़्ज़त किया। इससे संस्थान व आपकी बदनामी होगी। और मेरे कारण आपकी गरिमा और संस्थान पर कोई कलंक लग
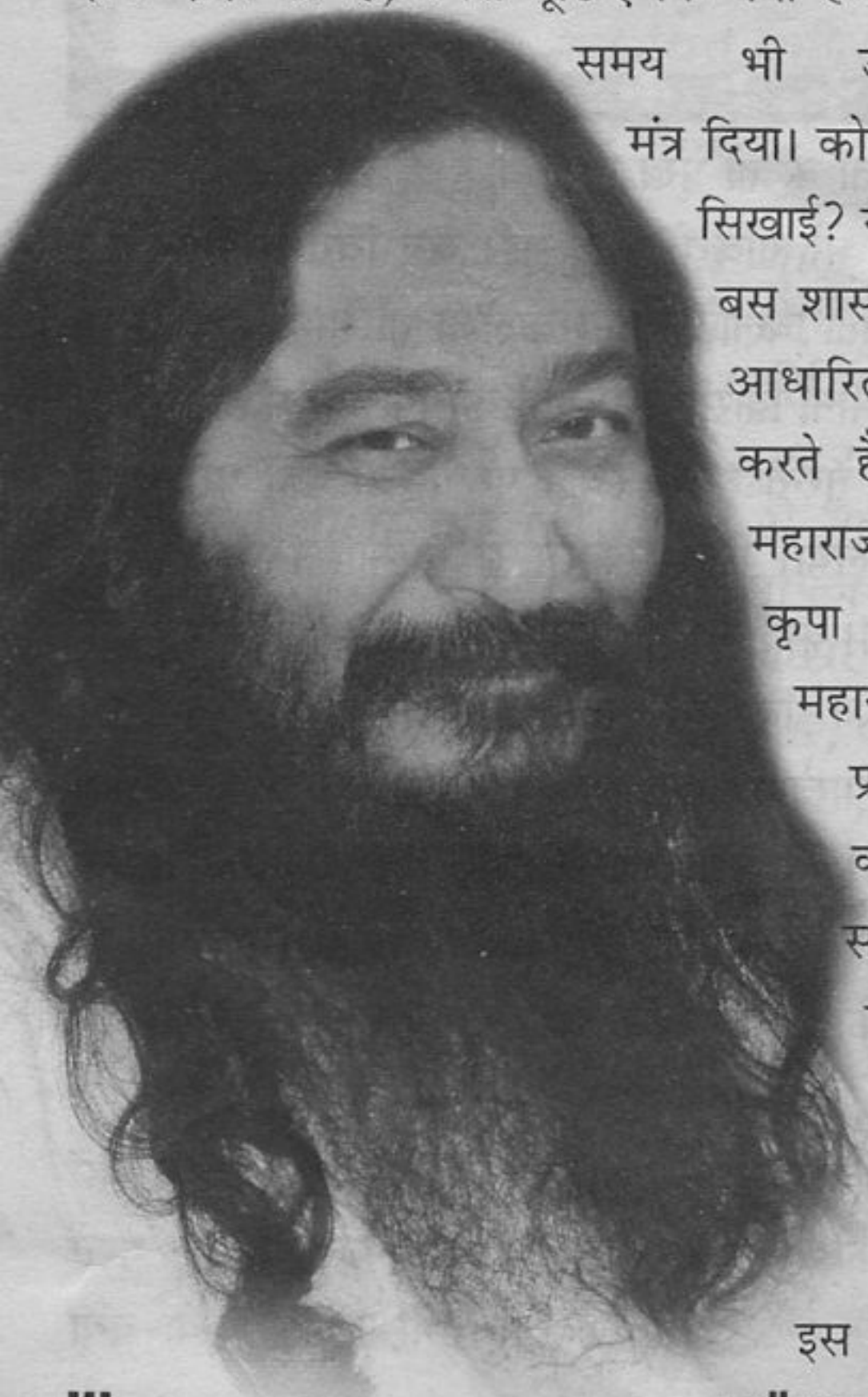
जाए, यह मैं बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगा। इस पाप का बोझ मुझसे नहीं उठाया जाएगा। मुझे इस पाप से बचा लो भगवन, बचा लो!' मैंने ज़ब सच्चे मन से महाराज जी से प्रार्थना की, तो मुझे अपने अंतस् में खूब प्रकाश दिखा। उधर अन्य स्वामियों और गुरु-भाइयों को महाराज जी के दर्शन हुए।

दस मिनट के बाद हम सभी ने आँखें खोलीं। विरोधी अब भी लट्ठ लिए हमारे सामने खड़े थे। हमने एक बार फिर उन्हें समझाने की कोशिश की। कुछ गाँव के लड़कों को मनाया कि वे एक बार गाँव जाकर देख आएँ कि अब बच्ची कैसी है। बड़ी मुश्किल से वे लड़के जाने को राज़ी हुए। अब जब तक वे लड़के वापिस नहीं आए, हम इन विरोधियों को अलग-अलग तर्क देकर मनाने की कोशिश करते रहे। पर कोशिश में संघर्ष ही चलता रहा, कोई निष्कर्ष नहीं निकला।

जब वे लड़के गाँव पहुँचे, तो वहाँ एक करिश्मा घट चुका था। ऐसा करिश्मा जिसे खुद अपनी आँखों से देखने पर भी विश्वास न हो। वह छोटी-सी बच्ची जीवित हो चुकी थी! उसके शरीर का नीला रंग उतर गया था। वह सामान्य रूप से सांस ले रही थी। गाँव वाले इस चमत्कार को देखकर भाव-विभोर हो उठे। सबने एक स्वर में गुरु महाराज जी की जयघोष बुलंद की। फिर जल्दी से उस बच्ची को साथ लेकर हमारे पास पहुँचे। एक ही सांस में गुरु महाराज जी की कृपा का सारा वृत्तांत कह सुनाया। मेरी आँखें नम हो गईं और दिल ने महाराज जी को कोटि-कोटि नमन किया। विरोधी भी इस चमत्कार को देखकर स्तब्ध से रह गए। उन्हें एहसास हो गया कि जिनका वे विरोध कर रहे हैं, वे कोई सड़कछाप बाबा-सन्यासी नहीं हैं। बल्कि एक पूर्ण महापुरुष, सतगुरु के शिष्य हैं। अत: उन सभी विरोधियों ने, वहीं सबके बीच, हाथ जोड़कर हमसे मांफी मांगी। फिर हमसे वापिस गाँव चलने का आग्रह भी किया। लेकिन हमने इंकार कर दिया, क्योंकि उसी शाम को हमें किसी अन्य स्थान पर सत्संग-कार्यक्रम करना था। इसलिए हम सब गाँववासियों से विदाई लेकर आगे बढ़ गए।

शाम के उस सत्संग के दौरान.... हमने देखा, वही विरोधी लोग कुछ अन्य लोगों के साथ इस गाँव में भी पहुँच गए। पर इस बार वे विरोधी भाव लिए नहीं, बल्कि श्रद्धा से पूर्णत: ओतप्रोत होकर आए थे। सत्संग समाप्ति के बाद वे सज्जन, जिनकी नातिन के साथ चमत्कार घटा था, खुद मंच पर आए और संगत के साथ अपना अनुभव सांझा किया। खूब खुलकर ज्ञान व महाराज जी की महिमा का बखान किया। अंत में बोले- 'भाइयों, मैं सच कहता हूँ, ये कोई साधारण संत नहीं हैं। इनके गुरु बहुत पहुँचे हुए हैं। इतने महान हैं कि हम जैसे आम लोगों को भी भगवान के दर्शन करवा देते हैं। इतना ही नहीं, उनसे जुड़ने के बाद जीवन में अनन्त कृपाएँ बरसती हैं। चमत्कार घटते हैं। मांगने से पहले मुरादें पूरी होती हैं...'

उस क्षेत्र के लोगों पर इन बातों का काफी अच्छा प्रभाव पड़ा। इसके बाद हम अपने आगे के सफर पर निकल गए। अनेक गाँवों, क्षेत्रों में प्रचार-प्रसार किया। फिर करीबन छ: महीने बाद हम वापिस सेत्तापुर गाँव लौटे। गाँववासियों ने खूब ज़ोरो-शोरों से हमारा स्वागत किया। हुजूम के हुजूम उमड़कर हमारे पास आए और ज्ञान-दीक्षा की याचना करने लगे। हमने हैरान होकर वहाँ के गुरु-भाइयों से पूछा- 'भई, ऐसा इन छ: महीनों में यहाँ क्या हो गया कि इतने लोग इस ज्ञान के जिज्ञासु बन गए?' उन्होंने कहा- 'स्वामी जी, बस पूछिए मत। आपके जाने के बाद यहाँ दीक्षित लोगों के जीवन में कैसे-कैसे चमत्कार घटे! सबसे बड़ा चमत्कार तो रामराज जी के साथ ही घटा। आपको याद होगा कि उन्होंने संगत के बैठने के लिए अपनी आलू की खेती पर दरियां बिछवा दी थीं। लोगों को यकीन था कि इस कारण उनका आलू दब जाएगा। बाकी की फसल को भी संगत ने पैरों से रौंद दिया था। बस 25% फसल ही सही-सलामत दिखती थी। लेकिन जब आलू निकालने का वक्त आया, तो दृश्य बिल्कुल उलट निकला। जहाँ-जहाँ संगत बैठी थी या जहाँ-जहाँ से चलकर आई थी, वहाँ की जब ज़मीन खोदी गई, तो 4-5 इंच के आलू निकले! बिल्कुल ताजे, सही-सलामत! न कहीं से दबे हुए, न पिसे हुए, न ही किसी पर कोई दाग! बल्कि जो बाकी का 25% क्षेत्र था, जिस ओर संगत गई ही नहीं थी, वहाँ के आलू बिल्कुल छोटे-छोटे निकले! रामराज जी ने सभी

पड़ोसियों, रिश्तेदारों को बुलाकर यह नज़ारा दिखाया। सब हैरान रह गए।'

उनके मुख से यह लीला सुनकर मेरे मुँह से एक ही बात निकली- **सा धरती भई हरीआवली, जिथै मेरा सतिगुरु बैठा आइ**- जहाँ मेरे सतगुरु का सत्संग होगा, वह धरती तो हरी-भरी और उपजाऊ होगी ही!

अगले दिन, हमें दिल्ली के लिए रवाना होना था। अधिकतर सभी गाँववासी हमें सादर बस-स्टैण्ड तक छोड़ने आए। उन्होंने हम तीनों स्वामियों के गले में कई-कई पुष्पमालाएँ डालीं। हमारे सम्मान में हवा में फायरिंग की। ज़ोर-ज़ोर से महाराज जी के जयकारे बुलंद किए। यह दृश्य देखकर एक बार फिर मेरी आँखें छलछला आईं। मन ने कहा- 'हे गुरुवर, आपकी लीला न्यारी है! कहाँ तो नियति ने हमारे गलों के लिए फंदे तैयार कर दिए थे और कहाँ अब इनमें फूल-मालाएँ पहनाई जा रही हैं! कहाँ तो ये गोलियाँ हमारे सीनों पर दागी जाने वाली थीं, कहाँ अब हमारी सलामी में आकाश में छोड़ी जा रही हैं... सच में प्रभु, आप बस आप हो! यदि आपकी ये लीलाएँ देखकर भी कोई आपकी गुरुता न समझ सके, तो उससे बड़ा मूर्ख कौन होगा... अब तो हर श्वांस यही कहती है कि धन्य हो गया हमारा चलना, जो हमें आपके चरणों में समर्पित होने का मौका मिला। महाराज जी, बस इतनी कृपा और करना कि जब तक इस शरीर में प्राण हैं, तब तक हम आपकी बंदगी करते रहें और इस ज्ञान के संदेश को वहाँ-वहाँ तक ले जाएँ, जहाँ-जहाँ तक आपकी कृपा से जीवन धड़क रहा है।' ▫▫

उठाएँ कलम और अपनी विचार-शक्ति को इस अगले प्रश्न के लिए प्रवाहित होने दें। इस प्रश्न के श्रेष्ठ उत्तर मार्च माह के अंक में प्रकाशित किए जाएँगे।

नोट :
1. उत्तर अपने नाम, उम्र, पते व फोन नं. के साथ लिखकर भेजें। हमारा पता है- 'अखण्ड ज्ञान कार्यालय, प्लॉट न. 3, पॉकेट ओ.सी.एफ., पुष्पांजलि एन्कलेव के पीछे, पीतमपुरा एक्स., दिल्ली-34, भारत।'
2. आप लिप्यांतरण (Transliteration) रूप में akhandgyan@gmail.com पर भी हमें अपना उत्तर ई-मेल कर सकते हैं। (उदाहरण- 'मेरा उत्तर है' को ऐसे लिखें- mera uttar hai)
3. उत्तर मात्र 100 शब्दों का हो।
4. जिस महीने में प्रश्न पूछा गया है, उस महीने की 20 तारीख तक हमें आपका उत्तर प्राप्त हो जाना चाहिए। जैसे इस बार हमें 20 जनवरी तक उत्तर प्राप्त होना आवश्यक है।
5. अपने पत्र या ई-मेल के ऊपर लिखें- 'मंथन हेतु' या 'manthan hetu'.